॥ ओ३म् ॥

कर्तव्य दर्पण

लेखक:—

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

प्रकाशक :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

(सार्वदेशिक सभान्तर्गत श्री चन्द्रभानु वेद-
मित्र स्मारक स्थिर निधि के व्याज से प्रकाशित)

मुद्रक : -

सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-६

पंचमवार १० हजार } संवत् २०२७ { मूल्य सजिल्द १)५० पैसे

॥ ओ३म् ॥

द्वितीय संस्करण का

वक्तव्य

धर्म और मोक्ष में आर्य जनों की बड़ी रुचि है। कर्त्तव्य-पालन धर्म का आधार है और मोक्ष का द्वार है। इस प्रकार कर्त्तव्य-पालन की ही प्रधानता रहती है। शास्त्रों में धर्म, यज्ञ और कर्त्तव्य-कर्म तीनों का एक दूसरे के स्थान में प्रयोग पाया जाता है। कर्त्तव्य का स्पष्ट मार्ग दिखाने वाली पुस्तक विशेष मान्य है। इसलिए आर्यजगत् ने सत्यार्थप्रकाश से दूसरे नम्बर पर श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के कर्त्तव्य दर्पण को स्थान दिया हुआ है। जितनी इसकी मांग है, छोटे ग्रन्थों में अन्य किसी की इतनी नहीं। शायद ही कोई आर्य घराना हो जिसमें कर्त्तव्य-दर्पण की एक प्रति न हो।

'कर्त्तव्य-दर्पण' का प्रथम विचार आर्यसमाज के प्रथम जिज्ञासु श्री वेदमित्रजी के मन में आया

ओर उन्होंने इसकी रूपरेखा श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के चरणों में उपस्थित की। उन्होंने इस आयोजना की सराहना की और अत्यन्त परिश्रम करते हुए नैनीताल निवासी श्रीमान् पं० देवीदत्त जी त्रिपाठी के सहयोग से इस कल्याणकारी ग्रन्थ का निर्माण किया।

कुछ चिर पीछे कागज और छपाई की महंगाई अथवा अन्य कारणों से कुछ विषय और कुछ भजन कम कर दिए, जो श्री वेदमित्र जी को अखरता रहा। अब के उन्होंने सार्वदेशिक सभा में अपने ५०००) के दान की स्थायी निधि के व्याज से यह ग्रन्थ पूरे आकार में छपवा कर और लगभग लागत पर वितरित करने का आग्रह किया। सो इस रूप में सार्वदेशिक सभा दानी महाशय की इच्छा पूर्ण कर आर्यजगत् की एक महान् सेवा करने में कृतकार्य हुई।

पाठकगण श्रद्धापूर्वक और बुद्धिपूर्वक इसमें लिखे निर्देशों को अपने जीवन में लाने का यत्न करके अपने मनोरथ की सिद्धि कर पायेंगे।

धर्म-अर्थ काम-मोक्ष की सिद्धि जीवन का ध्येय माना है। इसकी सरलतम व्याख्या यह है कि धर्म द्वारा 'अर्थ' (धन) कमाना, धर्मानुकूल 'काम' (मन और इन्द्रियों के सुख भोग प्रमोद) का उपभोग और इन तीनों द्वारा सात्विकतापूर्वक कर्त्तव्य कर्म करते हुए मोक्ष की उपलब्धि। यह मनुष्य जीवन की सफलता है।

इस पुस्तक में इतनी सामग्री है जितनी अन्य किसी में नहीं। अतः इसे अधिक से अधिक संख्या में अपने इष्ट मित्रों को भेंट कर आर्यसमाज के प्रचार में सहयोग प्रदान करें।

रामगोपाल
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली-१

तृतीय संस्करण का

वक्तव्य

कर्त्तव्य-दर्पण के एक सस्ते संस्करण की आवश्यकता देर से अनुभव की जा रही थी। इसी बीच में नेफा और लद्दाख आदि के हमारे जवानों में वितरण के लिए आर्य समाज के साहित्य को भिजवाने की योजना बनी जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक स्थिर निधि के व्याज के धन से कर्त्तव्य-दर्पण बहुसंख्या में छपवाने का निश्चय किया गया और इस कार्य की पूर्त्यर्थ आर्य समाजों का भी आर्थिक सहयोग आवश्यक समझा गया। तदनुसार अपील प्रसारित की गई। हर्ष है कि आर्य-समाजें इस दिशा में अपने कर्त्तव्य को अनुभव करके उत्साह पूर्वक उत्तर दे रही हैं।

रामगोपाल
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

प्राक्कथन

श्रीयुत म० वेदमित्र जिज्ञासु रईस तीतरों, जि० सहारनपुर, जो प्रतिवर्ष नियम से लगभग ६ मास मेरी कुटी के समीप रामगढ़ (नैनीताल) में रहा करते हैं, उसकी तीन कन्याओं में से मझली कन्या कृष्णाकुमारी थी। यह कन्या अत्यन्त अल्पायु ही से अपनी सुशिक्षिता और तपस्विनी माता (श्रीमती सुमित्रा देवी) तथा त्याग और ईश्वभक्ति में रत अपने पिता (श्रीयुत वेदमित्र जिज्ञासु) की गोद में परवरिश पाने के कारण बड़ी समझदार थी, बड़े प्रेम से ईश्वरभक्ति के वेदमन्त्र पढ़ने, भजन गाने और किसी को कुछ दे देने से बड़ी प्रसन्न हुआ करती थी। उसने ६ वर्ष की आयु ही में अपने आग्रह से अपना यज्ञोपवीत और वेदारम्भ संस्कार कराया था, सात वर्ष की वह पूरी भी नहीं होने पाई कि दुर्भाग्य से बीमार हो गई और सब कुछ

कराने पर भी रोग से मुक्त नहीं हो सकी। श्रावण कृष्णा १० संवत् १९८६ वि० तदनुसार ३१ जुलाई १९२९ ई० को भुवाली में, जहां योग्य डाक्टरों के द्वारा उसकी चिकित्सा हो रही थी, असमय और अल्पायु ही में काल के गाल में समा गई। उसका जन्म कार्तिक शुक्ला सप्तमी १९७९ वि० तदनुसार २८ अक्टूबर १९२२ ई० को हुआ था, इसलिए मृत्यु के समय उसका सातवां वर्ष पूरा भी नहीं हो पाया था। यह स्वाभाविक था कि माता-पिता को ऐसी असाधारण कन्या की मृत्यु का अधिक दुःख होता, सभी दुःखी हुए।

इस दुःख के शान्त होने और स्वर्गगामिनी पुत्री की यादगार स्थिति के साथ बनी रहने के उद्देश्य से उसके माता और पिता ने विरक्ताश्रम

ज्वालापुर* में यज्ञशाला और पुस्तकालय के सुन्दर और विशाल भवन बनवाये हैं। उसी की यादगार में उन्होंने यह भी निश्चय किया था कि एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जावे जो प्रतिदिन आर्य परिवारों में काम आने के योग्य हो और पुस्तक में वे वेद-मन्त्र और भजन भी शामिल कर दिये जावें, जिन्हें कृष्णाकुमारी बड़े प्रेम से गाया करती थी। तदनुसार यह पुस्तक प्रकाशित की जाती है।

ऐसी पुस्तक के लिए स्वाभाविक था कि उसका मसाला वेद तथा अन्य आर्षग्रन्थों से संग्रह किया जावे, तदनुसार संग्रह किया गया है। इस संग्रह-कार्य में पं० देवीदत्त जी त्रिपाठी

* हरिद्वार के निकट ज्वालापुर में आर्य वानप्रस्थियों और सन्यासियों के लिए कई वर्ष से एक आश्रम खुला है और अच्छी खासी उन्नत दशामें है उसी आश्रम का नाम विरक्त-आश्रम है।

नैनीताल निवासी ने, जो इस कन्या के अध्यापक भी थे, बड़ा परिश्रम किया है। इस प्रकार की अनेक पुस्तकें काशी, लाहौर और गया आदि स्थानों से प्रकाशित भी हो चुकी हैं,परन्तु पाठक देखेंगे कि इस पुस्तक में मनुष्य जीवन को उन्नत करने के लिए अनेक व्रत और ब्रह्मचर्य के साधन आदि ऐसे दिये गये हैं जिनसे लाभ उठाकर प्रत्येक नर-नारी अपने को चरित्र रूप सम्पत्ति से सम्पन्न बना सकते हैं।

पुस्तक वास्तव में प्रत्येक के लिये बड़े ही काम की है और इसलिए यह आशा की जाती है कि अधिक से अधिक लाभ उठाया जायगा।

नारायण-आश्रम, रामगढ़
श्रावण-शुक्ला-१ —नारायण स्वामी
सम्वत् १९८७ विक्रमी

निवेदन

पाठकवर्ग ! मेरी इच्छा थी कि अपना होनहार पुत्री कृष्णाकुमारी देवी जिसका अल्प आयु में ही दुर्भाग्य से देहान्त हो गया, जिसके गुणों का स्मरण आकर मुझे अब भी क्लेश पहुंचता रहता है, उसकी पुण्यस्मृति में कोई ऐसी उपयोगी, भक्ति वैराग्य के भजन, वेद मन्त्र और जीवन को सार्थक बनाने वाले उपदेशों से भरी हुई पुस्तक संग्रह होकर ईश्वर प्रेमियों के लिए लाभदायक वस्तु बन जावे। मेरा सौभाग्य है कि पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने मेरी इस प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर अपने बहुमूल्य समय को इस कार्य के लिए प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया है, उनकी इस कृपा तथा महान् उपकार का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं। ईश्वर कृपा करे कि जिस भाव से प्रेरित होकर मैंने इस कार्य का विचार किया है, भक्त लोग इसे उसी भाव से अपनावेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा। —वेदमित्र जिज्ञासु, रामगढ़

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. दिनचर्या	१
२. प्रातःकालीन व्रत	२
३. प्रातःकालीन मन्त्र	३
४. ब्रह्म-यज्ञ (संध्या)	१०
५. प्राणायाम—१	४१
६. देव-यज्ञ	७७
७. बलिवैश्वदेव	६१
८. पितृ-यज्ञ	६६
९. अतिथि-यज्ञ	१११
१०. व्यायाम	११४
११. प्राणायाम—२	११७
१२. स्वाध्याय	१४८
१३. ब्रह्मचर्य	१६०
१४. सोते समय के मन्त्र	१६७
१५. ईश्वर उपासना	१७२

१६. सामाजिक कर्त्तव्य १८५
१७. नैमित्तिक कर्म १८७
१८. यज्ञ (हवन) १८९
१९. प्रार्थनोपासना-मन्त्र २०५
२०. स्वस्तिवाचन २११
२१. शान्ति प्रकरण २३३
२२. सामान्य प्रकरण २५३
२३. पर्वों की सूची २८२
२४. पर्व-पद्धति २८४
२५. आर्य समाज के नियम २९२
२६. आर्य समाज के उपनियम ३०५
२७. आर्य समाज के मन्तव्य ३३२
२८. आश्रम और वर्ण ३३९
२९. कर्म तथा भक्ष्याभक्ष्य ३४८
३०. सोलह संस्कार ३५२
३१. वैदिक साहित्य ३५६
३२. प्रामाणिक ग्रन्थ ३५९

३३. ऋषि दयानन्द जीवन ३६०
३४. ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ ३९५
३५. आर्य समाज के काम ३९९
३६. आप्त वचन ४०२
३७. सत्संग के नियम ४२३
३८. प्रवेश-पद्धति ४२८

भजनों की सूची

१. आज मिल सब गीत गाओ २७७
२. आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया ३८४
३. अन्त समय में हे जगदीश्वर ४१७
४. अय विश्वनाथ मन का चंचल ४४०
५. ऋषि दयानन्द ने जगाया ३९०
६. ओ३म् अनेक बार बोल १८१
७. ओ३म् अक्षर अखिलाधार १७९
८. ओ३म् जय जगदीश हरे ८९
९. करो हरी नैया मोरी पार १७३
१०. चन्द्र मण्डल में कोई देखते ४१८
११. जय जय पिता परम आनन्द दाता ८६
१२. जिसमें तेरा नहीं विकाश १७५
१३. जीवन ! बन तू फूल समान २८०
१४. जलवा कोई देखे अगर इकबार ४१५

१५. जो हरिगीत प्रीति संग गाय	४४३
१६ तुम हो प्रभु चांद, मैं हूँ चकोरा	१७२
१७. तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया	४३८
१८. दयानन्द देश हितकारी	३८५
१९. देखो तो स्वामी कैसा उपकार	३८६
२०. धर्म वैदिक है हमारा	४२७
२१. पितु मातु सहायक स्वामी सखा	१७४
२२. प्रेम बीज तू अविनाशी है	१७७
२३. पिता जी तुम पतित उधारन हार	४११
२४. पायें किस प्रकार हम दर्शन	४४६
२५. प्रीतम तू ही प्रेम का धाम	४४७
२६. पीकर तेरा प्रेम प्याला	४५३
२७. भोर भई पक्षी बन बोलें	८
२८. भजले ओंकार रे मन मूर्ख	४४२
२९. मन मेरो ओंकार भजो रे	९
३०. महा ऋषि खाक नशीनों को	३८८
३१. मोहन मन्त्र सिखा दे मैय्या	४१२

३२. ममता तू न गई मन ते	४१३
३३. मैं उनके दरस की प्यासी	४२०
३४. मन मतवारा इन्द्रिय दश में	४२१
३५. मन पछतैहैं अवसर बीते	४२१
३६. मत हीरा जन्म गंवाओ	४३६
३७. मुझे धर्म वेद से हे पिता	२७८
३८. यही है आरजू भगवन्	४५४
३९. रहता है तापो तेज तरो बल	४१६
४०. विश्वपति के ध्यान में जिसने	८७
४१. वेदों का डका आलम में	३९२
४२. शरण अपनी में रख लीजो	१८३
४३. शरण प्रभु की आओ रे	४४२
४४. हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन	४४४
४५. हे दयामय ! हम सबों को	७५
४६. हे जगत पिता ! हे जगत् प्रभु !	४४९
४७. हम ने ली है फकत इक तुम्हारी	४५१

॥ ओ३म् ॥

कर्त्तव्य-दर्पण

[१]

दिनचर्या

प्रातःकाल ४ बजे से ४॥ तक वेद मन्त्र का पाठ तथा व्रत ग्रहण

४॥ से ५॥ शौच, स्नान, सन्ध्या

५॥ से ६॥ व्यायाम वायुसेवन

६॥ से ७ तक अग्निहोत्र और भजन गान

नोटः—यह कार्य समस्त परिवार के स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी करें।

७ से ८ स्वाध्याय

८ से १० अन्य आवश्यक कार्य

१० से ११ भोजन और मनोरंजन

११ से ५ नियमित व्यवसाय-सम्बन्धी कार्य
५ से ६ वायुसेवन
६ से ७ अग्निहोत्र और सन्ध्या
७ से ६ आवश्यक कार्य, परिवार के लोगों को धार्मिक शिक्षा तथा मन्त्रपाठ और व्रत ग्रहण
६ से ४ बजे (रात्रि) तक शयन

नोट:—देश, काल और अपने स्वास्थ्य की अवस्थानुसार इस दिनचर्या में उचित फेरफार किया जा सकता है।

[२]

प्रातःकाल करने योग्य व्रत

मनुष्य जब प्रातःकाल ४ बजे के लगभग जागे तब शान्ति के साथ अपने बिस्तर ही पर बैठ कर प्रसन्नचित्त हो प्रकरण [३] में लिखे

हुए मन्त्रों का उच्चारण उच्च स्वर से करे और उसके बाद ईश्वर को साक्षी समझता हुआ मन ही मन में परन्तु अच्छी तरह से समझता और ध्यान देता हुआ निम्न प्रतिज्ञा करे:—

व्रतपते प्रभो! हम व्रत लेते हैं कि आज समस्त दिन में कोई कुत्सित व्यवहार, जिससे अपनी या अन्यों की हानि हो, नहीं करेंगे, प्रत्येक काम धर्माधर्म का विचार कर इस प्रकार करेंगे कि वह हमारे और अन्यों के लिए भी कल्याण-कारक हो, यथासम्भव ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करेंगे और धर्मपूर्वक धन का संचय करेंगे, अपने परिवार के छोटे-बड़े एक एक व्यक्ति तथा अन्यों से भी ऐसा व्यवहार करेंगे जिससे वह प्रेम प्रीति और संसार में सुख की मात्रा बढ़ाने वाला हो।

[३]

प्रातःकाल पाठ के योग्य मन्त्र

ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

ऋ० मं० ७ सू० ४१। मं० १

अर्थ (प्रातः) प्रभात समय में (अग्निम्) स्वप्रकाश स्वरूप (प्रातः, इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्य युक्त (प्रातः) (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः) (अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः)(भगम्) ऐश्वर्ययुक्त(पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे(प्रातः)(सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की

(हुवेम) स्तुति करते हैं ॥१॥

ओं प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम, वयं पुत्र-मदितेर्यो विधर्ता। आध्रश्चिद् यं मन्यमान-स्तुरश्चिद्राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

ऋ० मं० ७। सू० ४१। मं० २॥

(प्रातः) पांच घड़ी रात्रि रहे (जितम्) जय-शील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करने हारे और (यः) जो सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सब ओर से धारण कर्त्ता (यं चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जाननेहारा (तुरश्चित्) दुष्टों को दण्डदाता और (राजा)सब का प्रकाशक है (यं) जिस (भगम्) भजनीय स्व-रूप (चित्) ब्रह्म को (भक्षि) सेवन करता हूं (इति) इस प्रकार (भगवान्) (आह) उपदेश

करता है, इसलिए (वयम्) हम उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं ॥२॥

ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मंत्र ३ ॥

हे (भग) भजनीय स्वरूप ! (प्रणेतः) प्रेरक (भग) ऐश्वर्य (सत्यराधः) सत्य 'धन' के देनेहारे (भग) ऐश्वर्यदाता (नः)हमको (इदम्)इस(धियम्) बुद्धि को (ददत्) दीजिये और (उदव) रक्षा कीजिये। हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि (अश्वैः) घोड़े आदि को(नः)हमारे लिये (प्रजनय) प्रकट कीजिये। (भग) हे ईश्वर ! (हम लोग) (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्यों वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार होवें ॥३॥

ओं उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्र

पित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य, वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० ४ ॥

हे भगवन् ! आप की कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इसी समय (प्रपित्वे)प्रकर्षता व उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अह्नाम्) इन दिनों के मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त(स्याम)होवें(उत) और हे(भगवन्) धन देनेहारे (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानां) पूर्ण विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) प्रवृत्त रहें ॥४॥

ओं भग एव भगवां अस्तु देवाः तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भगसर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

ऋ० मं० ७ । सू० ४१ । मं० ५ ॥

हे (भग) सकलैश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर जिस से (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सज्जन (इत् जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप (भग) हे ऐश्वर्यप्रद ! (इह) संसार और (नः)हमारे गृहाश्रम में (पुरः एता)अग्रगामी(भव) हूजिए और जिससे (भगः एव) सम्पूर्ण ऐश्वर्य-युक्त आप ही हमारे (भगवान्)पूजनीय देव(अस्तु) हूजिए, (तेन) इसी हेतु से (देवा वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य सम्पन्न (स्याम) होवें ॥५॥

भजन (१)

भोर भयी पक्षी वन बोले,
उठो जन प्रभुगुण गाओ रे।
लखो प्रभात प्रकृति की शोभा,
बारबार हरसाओ रे ॥
प्रभु की दया सुमरि निज मनमें,

सरल स्वभाव उपजाओ रे ।
हो कृतज्ञ प्रेम में उनके,
नयनन नीर बहाओ रे ॥
ब्रह्मरूप सागर में मन को,
बारम्बार डुबाओ रे ।
निर्मल शीतल लहरें ले ले,
आत्म ताप बुझाओ रे ॥

भजन (२) राग भैरवी

मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥ टेक ॥
प्रातःकाल उठ शुद्ध बदन,
ह्वै चित्त एकाग्र करो रे ॥
ईश्वर सच्चिदानन्द रूप में,
नित तुम ध्यान धरो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥१॥
करि सन्ध्या जप महामन्त्र को,
बुद्धि विमल करो रे ।

यथाशक्ति उपकार नित्य कर,
जीवन सुफल करो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥२॥
सब जीवन पर कृपा दृष्टि कर,
हिंसा त्याग करो रे ।
मांस, मीन, मद, मुद्रा, मैथुन,
पञ्च मकार तजो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥३॥
किशोर बहुत दिन सोय बितायो,
अब कुछ चेत करो रे ।
काल कराल निकट आ पहुंच्यो,
अब तो तनिक डरो रे ॥
मन मेरो ओङ्कार भजो रे ॥४॥

ब्रह्म-यज्ञ [सन्ध्या] और उसका रहस्य

मुख्य सन्ध्या के प्रारम्भ करने से पहले तीन प्राणायाम करने चाहिएं और गायत्री मन्त्र का

पाठ करते हुए चोटी में गांठ दे लेनी चाहिये। पहली क्रिया से चित्त की स्थिति संध्या करने के अनुकूल होती है और दूसरी क्रिया, बिखरे हुए बाल संध्या में बाधक न हों, इसलिये की जाती है।

आचमन मन्त्र

इस मन्त्र को पढ़कर तीन वार आचमन करना चाहिये।

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः॥

यजुर्वेद अध्याय ३६। मन्त्र १२॥

शब्दार्थ–(ओम्) ईश्वर का मुख्य नाम। (शम्) कल्याणकारी। (नः) हम पर। (देवीः) सर्वप्रकाशक (अभिष्टये) इच्छित फल के लिये। (आपः) सर्वव्यापक। (भवन्तु) हों। (पीतये) आनन्द प्राप्ति के लिये। (शंयोः)सुख की (अभि-

स्रवन्तु) वर्षा करें। (नः) हम पर।

भावार्थ—सर्वप्रकाशक और सर्वव्यापक ईश्वर इच्छित फल और आनन्द प्राप्ति के लिये हमारे लिये कल्याणकारी हों और हम पर सुख की वृष्टि करें।

पहला कर्त्तव्य

हमको अपने साथ क्या करना चाहिये ?

इन्द्रियस्पर्श मन्त्र

इस मन्त्र से इन्द्रिय स्पर्श करना चाहिये।

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे ॥

भावार्थ–हे ईश्वर! मेरी वाणी, प्राण, (नासिका) आंख, कान, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाहु और हाथ के ऊपर नीचे के भाग (अर्थात्) सभी इन्द्रियां बलवान् और यशवाली हों।

मार्जन मन्त्र

इस मन्त्र से प्रत्येक इन्द्रिय पर जल सिञ्चन करना (छिड़कना) चाहिये।

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

शब्दार्थ–(ओ३म्) ईश्वर का मुख्य नाम (भूः) सत्यस्वरूप । (पुनातु) पवित्र करे। (शिरसि)

शिर को। (भुवः) चित्त स्वरूप। (नेत्रयोः) दोनों नेत्रों को। (स्वः) आनन्दस्वरूप। (कण्ठे) कण्ठ को। (महः) महान्। (हृदये) हृदय को। (जनः) उत्पादक। (नाभ्याम्)नाभि को। (तपः)तेजस्वी। (पादयोः) दोनों पैरों को। (सत्यम्) अविनाशी। (पुनः) फिर)। (खम्) व्यापक। (ब्रह्म) महान् ईश्वर। (सर्वत्र) समस्त शरीर को।

भावार्थ–हे ईश्वर! आप मेरे शिर, नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, पैर अर्थात् समस्त शरीर को पवित्र करें।

प्राणायाम मन्त्र

इस मन्त्र से तीन बार प्राणायाम करना चाहिये।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।

(अर्थ पूर्ववत्)

प्राणायाम विधि–(१) पद्मासन या किसी अन्य आसन से, जिससे सुखपूर्वक उस समय तक विना आसन बदले बैठ सको, जितनी देर प्राणायाम करना इष्ट हो, इस प्रकार बैठ जाओ कि छाती, गला और मस्तक सीध में रहें।

(२) नाक से धीरे २ श्वास बाहर निकालो (रेचक) और उसे बाहर ही रोक दो। (बाह्य-कुम्भक)।

(३) जब और अधिक देर विना श्वास लिये न रह सको तो धीरे २ श्वास भीतर खींचो। (पूरक) और उसे भीतर ही रोक दो (आभ्यन्तर कुम्भक)।

(४) जब और अधिक समय कुम्भक (भीतर श्वास रोक रखना) न कर सको, तो फिर सं० (२) के अनुसार रेचक आदि करो।

(५) प्रत्येक क्रिया के साथ प्राणायाम मन्त्र का मानसिक जप करते जाओ अर्थात् विना जिह्वा

से नाम लिए मन में अर्थ का चिन्तन करते रहो।

अघमर्षण-मन्त्र

इन मन्त्रों का अर्थ के साथ चिन्तन करते हुए ईश्वर की महत्ता अनुभव करो कि किस प्रकार उसने उस महान् जगत् को रचा, जिससे हृदय में उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास हो, इसी उत्पन्न श्रद्धा से मनुष्य पाप करने से बच जाया करता है।

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्य-जायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

**सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्प-
यत् । दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥**
ऋग्वेद १०।१९०।१।२।३॥

शब्दार्थ —(ऋतम्) ईश्वरीय ज्ञान वेद अर्थात् वह सब जो तीनों काल में एक जैसा रहा करता है। (च) और (सत्यम्) प्रकृति। (अभीद्धात्) ईश्वर के ज्ञानमय (तपसः) अनन्त सामर्थ्य से (अध्यजायत) प्रकट हुए। (ततः) उसी सामर्थ्य से। (रात्रिः) महाप्रलय, महारात्रि। (अजायत) उत्पन्न हुई। (समुद्रः) आकाश। (अर्णवः) जलों से भरा हुआ।

भावार्थ ईश्वर के ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से ईश्वरीय नियम (वेद) और प्रकृति प्रकट हुई, उसी सामर्थ्य से महारात्रि (महाप्रलय) उत्पन्न हुई और उसी सामर्थ्य से जलों से भरा हुआ आकाश

उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥*

शब्दार्थ—(अर्णवात्) जल भरे। (समुद्रात्) आकाश के पश्चात्। (संवत्सरः) सन्धिकाल (अधि अजायत)ऊपर बीता। तब (विश्वस्य)समस्त (मिषतः) चेतन (जीव) मात्र के। (वशी) वश में रखने वाले ईश्वर ने। (अहोरात्राणि) दिन रातों को (विदधत्) रचा।

भावार्थ – जल भरे हुए आकाश की उत्पत्ति के पीछे सन्धिकाल (महाप्रलय के बाद का वह

---

*नोट – (१) महाप्रलय के बाद महत्तत्व की उत्पत्ति के बाद स्थूल जल की उत्पत्ति तक जो काल बीतता है वह सूर्य के न होनेके कारण दिन, मास, वर्ष की गणना में नहीं आया करता। इस-लिये उसको सन्धि-काल कहते हैं। पहले मन्त्र में आये संवत्सर का अभिप्राय इसी सन्धिकाल से है।

समय जो जगत् की उत्पत्ति के प्रारम्भ से लेकर जब तक सूर्य उत्पन्न नहीं होता व्यतीत हुआ करता है) पूरा हुआ। उसके बाद समस्त चेतन जगत् को वश में रखने वाले ईश्वर ने दिन रात उत्पन्न किये ॥२॥ क्योंकि (धाता) धारने वाले ईश्वर ने। (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्र को (यथापूर्वम्) पूर्वकल्प से समान। (अकल्पयत्)* रच लिया था। (दिवञ्च) प्रकाशमान और (पृथिवीम्) प्रकाशरहित लोक। (अथो) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (स्वः) भी ॥३॥

---

* अकल्पयत् क्रिया का अर्थ 'रच लिया था' ऐसा करने से अहोरात्रि की उत्पत्ति से पहले सूर्य आदि की उत्पत्ति आ जाती है, क्योंकि विना सूर्य के दिन रात उत्पन्न नहीं हो सकते इसलिये केवल 'रचा' के स्थान में 'रच लिया था' अर्थ ही सुसंगत जान पड़ता है।

इस मन्त्र के बाद (शन्नो देवी०) आचमन मन्त्र पढ़कर तीन वार आचमन करना चाहिए।

दूसरा कर्त्तव्य

हम को अन्यों के साथ क्या करना चाहिये

मनसा परिक्रमा

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिता-दित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

अथर्ववेद ३। २७। १ ॥

शब्दार्थ—(प्राची दिक्) पूर्व दिशा में। (अग्निः)प्रकाश स्वरूप ईश्वर।(अधिपतिः)स्वामी (असितः) अंधकार से(रक्षिता) रक्षा करने वाला है(आदित्याः) सूर्य की किरणें। (इषवः) बाणरूप

हैं। (तेभ्यो अधिपतिभ्यो नमः) उस स्वामी के लिए नमस्कार हो। (रक्षितृभ्यो नमः) रक्षा करने वाले के लिये नमस्कार हो। (इषुभ्यो नमः) उन बाणों के लिये आदर हो। (एभ्यः नमः अस्तु) इन सबके लिए आदर हो। (योऽस्मान् द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है। (यं वयं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं। (तम्) उस द्वेष भाव को। (वः) आपके (जम्भे दध्मः)❀ विनाशक शक्ति के सम्मुख रखते हैं।

ओं दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपति-

---

❀ 'जम्भे दध्मः' का शब्दार्थ है (जम्भे) दाढ़ में (दध्मः) रखते हैं। 'जम्भे दध्मः' दाढ़ में रखना यह संस्कृत का मुहावरा नाश करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ करता है।

भ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

अथर्ववेद ३ । २७ । २ ॥

शब्दार्थ—(दक्षिणा दिक्) दक्षिण दिशा में (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है। (तिरश्चिराजि) टेढ़े चलने वाले (सर्प आदि) की पंक्ति से (रक्षिता) रक्षा करता है। (पितरः) चन्द्र किरणें* (इषवः) बाण तुल्य हैं।

(शेष अर्थ पूर्ववत्)

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो

*चन्द्र किरणों से विष का नाश होता है, शीतलता विष की नाशक होती है, इसलिए जल या पहाड़ों में रहने वाले सर्प कम विषैले होते हैं।

नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

अथर्ववेद ३। २७। ३॥

शब्दार्थ—(प्रतीची दिक्) पश्चिम दिशा में। (वरुणः) श्रेष्ठ ईश्वर। (अधिपतिः) स्वामी है। (पृदाकू) विषैले प्राणियों से। (रक्षिता) रक्षा करने वाला है। (अन्नम्)१ घृत। (इषवः) बाण के सदृश हैं।

(शेष अर्थ पूर्ववत्)

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो

(१)'अन्न' प्रत्येक भोज्य पदार्थ को कहते हैं। यहां अन्न से अभिप्राय घृत से है जो विषनाशकहै।

अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

अथर्व० ३ । २७ । ४ ॥

शब्दार्थ (उदीची दिक्) उत्तर दिशा में। (सोम:) शान्तिरूप ईश्वर। (अधिपति:) स्वामी है। (स्वज:) स्वयं उत्पन्न (कीट मच्छर आदि)से (रक्षिता)रक्षा करने वाला है।(अशनि:)बिजली* (इषव:) बाण तुल्य है। (शेष अर्थ पूर्ववत्)

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम

*भाद्रपद में बिजली की कड़क से वर्षा में अधिक उत्पन्न हुई मक्खी, मच्छर आदि 'स्वयंजात कीट' नष्ट हो जाया करते हैं।

एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म ॥५॥

अथर्व० ३ । २७ । ५ ॥

शब्दार्थ - (ध्रुवादिक) नीचे की दिशा में (विष्णुः) व्यापक ईश्वर । (अधिपतिः) स्वामी है । और (कल्माष) काली । (ग्रीवः) गर्दन वाले से । (रक्षिता) रक्षा करता है । (वीरुधः) वृक्ष-लता आदि (इषवः) बाणरूप हैं ।

(शेष अर्थ पूर्ववत्)

(नोट) 'कल्माषग्रीव' काली गर्दन वाले से अभिप्राय धुएं आदि से उत्पन्न विषैले वायु(Carbonic acid)से है । इस विषैले वायु को वृक्ष आदि अपने भीतर ग्रहण कर लेते हैं और उसके बदले में प्राणप्रद वायु (Oxygen) अपने भीतर से निकालते हैं, जिससे प्राणियों की रक्षा होती है ।

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो

रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥ अथर्व० ३।२७।६॥

शब्दार्थ—(ऊर्ध्वा दिक्) ऊपर की दिशा में (बृहस्पतिः) महान् ईश्वर। (अधिपतिः) स्वामी और (श्वित्रः)श्वेत कुष्ठादि रोगों से। (रक्षिता) रक्षा करने वाला है। (वर्षम्) वर्षा का जल (इषवः) बाण तुल्य है। (शेष अर्थ पूर्ववत्)

नोट—(श्वित्रः) यद्यपि श्वेत कुष्ठ को कहते हैं, परन्तु यहाँ सामान्य रोग के अर्थ में है। वर्षा का जल रोगनाशक होता है इसीलिये अंग्रेजी औषधियों में उन्हें तरल करने के लिये वर्षा के जल (Aqua) के मिलाने का विधान है।

छहों मन्त्रों के नीचे एक चित्र दिया जाता है, जिससे समस्त मंत्रों का स्पष्ट भाव एक जगह ही मालूम हो जावेगा:—

सं.	दिशा	अधिपति	किससे रक्षा करता है	साधन क्या है
१	पूर्व	अग्नि	असित:=अंधकार से	सूर्यकिरण
२	दक्षिण	इन्द्र	टेढ़े चलनेवाले सर्प आदि से	चन्द्रकिरण
३	पश्चिम	वरुण	विषैले जन्तुओं से	घृत
४	उत्तर	सोम	स्वयं उत्पन्न कीटादि से	बिजली
५	नीचे	विष्णु	विषैले गैस से	वृक्षादि
६	ऊपर	बृहस्पति	रोगों से	वर्षा का जल

तीसरा कर्त्तव्य

मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिये

उपस्थान मन्त्र

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।१।

यजु० ३५ । १४ ॥

शब्दार्थ—(वयम्) हम । (तमसः परि) अविद्यान्धकार से रहित ।(स्वः)सुख स्वरूप ।(उत्तमम्) प्रलय के पश्चात् भी रहने वाले । (देवम्) देव । (देवत्रा) दिव्य गुणयुक्त । (उत्तमम्) सर्वोत्तम के आत्मा को । (पश्यन्तः) जानते हुए ! (उत्तरम्) उच्चभाव में (अगन्म) प्राप्त हों ।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥२॥

यजु० ३३ । ३१ ॥

शब्दार्थ (उ) निश्चय (त्यं) उस (जातवेदसम्) वेदों के प्रकाशक। (देवं) दिव्यगुणयुक्त (सूर्यं) चराचरात्मा को (विश्वाय) सबको। (दृशे) दिखलाने के लिये। (केतवः) जगत् की रचना आदि गुणरूप पताकायें (उत् वहन्ति) भली भांति दिखलाती हैं।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आ प्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष७ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥

यजु० ७ । ४२ ॥

शब्दार्थ—वह ईश्वर (देवानाम्) उपासकों का। (चित्रम्) विचित्र। (अनीकम्) बल। (मित्रस्य) वायु। (वरुणस्य) जल और (अग्नेः) अग्नि का। (चक्षुः)प्रकाशक। (द्यावा) प्रकाशक। और (पृथिवी) अप्रकाशक लोकों तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष का धारक। (सूर्य्यः) प्रकाश स्वरूप। (जगतः) जंगम (च) और। (तस्थुषः) स्थावर का (आत्मा) आत्मा। (उदगात्) है।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥

यजु० ३६। २४॥

शब्दार्थ - (तत्) वह ब्रह्म (चक्षुः) सर्वद्रष्टा। (देवहितम्)उपासकों का हितकारी(शुक्रम)पवित्र।

(पुरस्तात्) सृष्टि के पूर्व से। (उच्चरत्) वर्तमान है। (पश्येम) उसकी कृपा से हम देखें। (शरदः) शतम्) १०० वर्ष तक। (जीवेम) जीवें। (शरदः शतम्) १०० वर्ष तक।(शृणुयाम) सुनें।(शरदः-शतम्) १०० वर्ष तक। (प्रब्रवाम) बोलें।(शरदः-शतम्) १०० वर्ष तक। (अदीना) स्वतन्त्र। (स्याम) रहें। (शरदः शतम्) १०० वर्ष तक। (च) और (शरदः शतात्) १०० वर्ष से। (भूयः) अधिक भी देखें सुनें आदि।

यहां फिर (शन्नो देवी०) आचमन मन्त्र पढ़ कर तीन आचमन करने चाहियें।

गायत्री मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो-देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

यजु० ३६। ३॥

शब्दार्थ—(ओम्) ईश्वर का मुख्य नाम।

(भूः) सत् । (भुवः) चित् । (स्वः) आनन्द (सवितुः) जगदुत्पादक (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त ईश्वर के । (तत्) उस । (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य । (भर्गः) शुद्धस्वरूप को । (धीमहि) धारण करें, (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को । (प्रचोदयात्) प्रेरित करे ।

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नम शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च

यजु० १६ । ४१ ॥

शब्दार्थ -(नमः) नमस्कार हो । उस (शम्भवाय) आनन्दमय । (च) और (मयोभवाय) आनन्दस्वरूप के लिए । (नमः) नमस्कार हो । उस (शंकराय) कल्याणकारी (च) और (मयस्कराय)

सुखदाता के लिए। [नमः] नमस्कार हो। उस [शिवाय] मङ्गलस्वरूप [च] और [शिवतराय] अत्यन्त आनन्ददाता के लिए।

व्याख्यान

मनुष्य, कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए, कर्त्तव्य [मनुष्य] योनि में आया करता है। कर्त्तव्य तीन हैं जिनकी पूर्ति उसको करनी होती है--(१) उसे अपने साथ क्या करना चाहिए। (२) अन्यों के साथ क्या करना चाहिए। (३)ईश्वर के साथ क्या करना चाहिए। इन्हीं कर्त्तव्यों का विधान ब्रह्म-यज्ञ अर्थात् वैदिक संध्या में है, मुख्य सध्या आचमन 'शन्नो देवी०' मन्त्र से आरम्भ होकर 'नमः शम्भवाय०' इस नमस्कार-मन्त्र के साथ समाप्त होती है।

'शन्नो देवीरभिष्टय०' इत्यादि मन्त्र में संध्या का उद्देश्य वर्णित है। मन्त्र का भाव यह है कि 'परमेश्वर जो सर्वव्यापक है, इच्छित फल और

आनन्द की प्राप्ति के लिये हम पर कल्याणकारी हो और हम पर सुख की वर्षा करे'—संसार में मनुष्य इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आया करता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तीनों कर्त्तव्यों का पालन किया करता है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य यदि दो शब्दों में वर्णन कर देना हो, तो इस प्रकार कहा जा सकता है, कि मनुष्य को दुनिया में अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करना चाहिए कि जब वह यहां से विदा हो तो उसे दुनियां के हर्ष समुदाय, खुशी के मजमुए (Happiness के Total) में कुछ वृद्धि करके जाना चाहिए। मन्त्र में इसी हर्ष की मात्रा-वृद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। इस प्रकार आचमन मन्त्र द्वारा तीनों कर्त्तव्यों का उद्देश्य वर्णन कर देने के बाद उन तीनों कर्त्तव्यों का विधान किया गया है। पहला कर्त्तव्य कि मनुष्यों को अपने साथ क्या करना

चाहिए, इन्द्रियस्पर्श मन्त्र से प्रारम्भ होकर अघमर्षण मन्त्रों तक समाप्त होता है; दूसरा कर्त्तव्य 'मनसापरिक्रमा' के ६ मन्त्रों में वर्णित है। तीसरे और अन्तिम कर्त्तव्य का उपदेश उपस्थान के मन्त्रों में किया गया है। अब उनका क्रमशः वर्णन किया जाता है।

पहला कर्त्तव्य

मनुष्यों को अपने साथ क्या करना चाहिए?

इन्द्रिय स्पर्श के मन्त्र में इन्द्रियों को स्पर्श करते हुए प्रार्थना की गई है कि उनमें बल आवे। यह मनुष्य का अपने साथ पहला कर्त्तव्य है। उसे अपनी इन्द्रियों को बलवान् बनाना चाहिए। मनुष्य का बाह्य शरीर इन्द्रियमय अर्थात् इन्द्रियों का समुदाय मात्र है। इस बाह्य शरीर अर्थात् समस्त ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को बलवान् बनाना चाहिए। आंख, नाक, कान, हाथ, पांव आदि

दशों इन्द्रियों को बलवान् बनाना कर्त्तव्य है। स्पर्श करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय पर विशेष ध्यान देकर इच्छा शक्ति का उस पर प्रयोग करके मन में यह विचार स्थिर करना चाहिए कि स्पृष्ट (छुए हुए) इन्द्रिय में बल आ रहा है। बल की इतनी अधिक उपयोगिता है कि अपने सम्बन्धी कर्त्तव्यों में उनका सबसे पहला स्थान है। उपनिषद् में कहा गया है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' (मुण्डकोपनिषद् ३। २। ४) अर्थात् जो मनुष्य निर्बलात्मा और निर्बलेन्द्रिय हैं वे ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते; परन्तु बल का जहां सदुपयोग होता है, वहां दुरुपयोग भी हो सकता है। अन्याय और अत्याचार बल ही से किये जाते हैं इसलिए बल के लिए नियन्त्रण अपेक्षित है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के वास्ते मनुष्य का दूसरा कर्त्तव्य, इसी स्पर्श मन्त्र में यह स्थिर किया गया है कि

उसे अपनी इन्द्रियों को यशवाला भी बनाना चाहिए। बल के साथ यश को जोड़ देने से बल का नियन्त्रण हो गया, अब बल का दुरुपयोग नहीं हो सकता। अन्याय और अत्याचार करने वाले से कभी नेक काम नहीं होते, वे सदैव बदनाम रहा करते हैं। संसार में यश और कीर्ति उन्हीं की हुआ करती है जो बल का सदुपयोग किया करते हैं यश इसलिए अनिवार्य है। प्रसिद्ध कहावत है 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' अर्थात् वही मनुष्य मर जाने पर भी जिन्दा समझा जाता है जिसका संसार में यश रहा करता है*। अस्तु।

*सर्वजीवत्ववाद (Animism) जिसका जन्म यूनान में हुआ था, उसका एक मुख्य सिद्धान्त ही यह था कि जब तक दिवङ्गत प्राणों के लिए प्रेम और उसकी शुभस्मृति जगत् में बाकी रहा करती है वह प्राणी जीवित ही समझा जाता है। (आत्मदर्शन पृष्ठ १७०)

मनुष्य का जहां पहला कर्त्तव्य यह है कि अपने को बलवान् बनावे उसके साथ ही दूसरा कर्त्तव्य यह है कि अपनी इन्द्रियों को यशवाला भी बनावे। मनुष्य को अपने साथ तीसरी बात क्या करनी चाहिए—उसका आदेश मार्जन मन्त्र में दिया गया है। मार्जन मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि उसके सिर नेत्रादि इन्द्रियों में पवित्रता आवे, यही अपने साथ करने के लिए तीसरा कर्त्तव्य है। मनुष्य को अपनी समस्त इन्द्रियों को पवित्र बनाना चाहिए। इन्द्रियों में पवित्रता आने से मनुष्य का आचार ठीक हुआ करता है और मनुष्य सदाचारी समझा जाया करता है। पवित्रता में इन्द्रियों का नियन्त्रण हुआ करता है। यदि नेत्र पवित्र है तो इसका भाव यह है कि वह "मातृवत् परदारेषु" की नीति के अवलम्बन के साथ ठहरा हुआ है और किसी को कुदृष्टि से नहीं देख सकता। पवित्रता से

स्वास्थ्य भी प्राप्त हुआ करता है, मनु ने कहा—"अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति" अर्थात् जल से शरीर शुद्ध हुआ करता है। किस प्रकार शरीर की शुद्धि से मनुष्य स्वस्थ हुआ करता है उस पर थोड़ा विचार करो। हमारे इस शरीर के असंख्य छिद्रों से शरीर का भीतरी मल पसीने द्वारा खारिज हुआ करताहै। जिस प्रकार कारखानोंमें दिन रात काम होने से बहुत सा मल बाहर फेंक देने के योग्य निकला करता है इसी प्रकार शरीर रूपी कारखाने में निरन्तर काम होने से कई पौंड मल मूत्र और पसीने के रूप में निकला करता है। तीनों मार्ग शुद्ध और साफ होने चाहिएं। तभी यह मल खारिज होकर शरीर शुद्ध हो सकता है। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि शरीर को जल से स्नान द्वारा शुद्ध रखे। शुद्ध रखने का मतलब यह है कि शरीर अच्छी तरह मल-मलकर साफ किया जावे जिससे प्रत्येक छिद्र

का मुंह साफ, खुला हुआ और इस योग्य हो जावे कि सुगमता से भीतर का मल बाहर निकल सके। स्नान न करने, अथवा नाम-मात्र के स्नान करने से छिद्रों का मुंह मल से बन्द सा रहेगा और भीतर का मल बाहर न निकल सकने से वह भीतर ही भीतर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनेगा । इस प्रकार विचार करने से पता चला कि प्रत्येक इन्द्रिय की शुद्धि से उसकी नीरोगता बनी रहती है। इसलिए अपने सम्बन्ध में करने के लिए मनुष्य का तीसरा कर्त्तव्य यह है कि वह अपनी इन्द्रियों को शुद्ध रखे। इन्द्रिय (बाह्य-शरीर) के शुद्ध रखने के सम्बन्ध में मनुष्य के इस प्रकार तीन कर्त्तव्य हैं—

(१) इन्द्रियों को बलवान् बनाना ।
(२) इन्द्रियों को यशवाला बनाना ।
(३) इन्द्रियों को पवित्र बनाना ।

इन कर्त्तव्यों के पालन कर लेने से इन्द्रियों अर्थात् बाह्य-शरीर के सम्बन्ध में मनुष्य का कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। अब चौथे कर्त्तव्य पर विचार करना है। स्थूल शरीर का बाह्य भाग इन्द्रियमय है। उससे सम्बन्धित कर्त्तव्यों का उल्लेख हो चुका है। स्थूल शरीर के अन्तर्भाग में फेफड़ा, हृदय, पाचनेन्द्रिय, मस्तिष्कादि सम्मिलित हैं। इनके सिवाय सूक्ष्म शरीर को पुष्ट और शुद्ध करने के लिए प्राणायाम किया जाता है। यही मनुष्य का चौथा कर्त्तव्य है। जो उसे अपने संबन्ध में करना चाहिये। प्राणायाम से उपर्युक्त कार्यों की पूर्त्ति किस प्रकार होती है इस पर थोड़ा विचार करना है—

प्राणायाम और शारीरिक उन्नति

प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इस बात को जानने के लिए एक दृष्टि शरीर के अन्दर होने वाले अनिच्छित कार्यों में

से हृदय और फेफड़ों के कार्यों पर डालनी होगी।

हृदय का स्थूल कार्य

इस शरीर में दो प्रकार की अति सूक्ष्म नलियां हैं, एक तो वे जो समस्त शरीर से हृदय में आती हैं और दूसरी नलियां वे हैं जो हृदय से समस्त शरीर में जाया करती हैं। पहली नलियां "शिरा" और दूसरी "धमनी" कहलाती हैं।

शिराओं का काम यह है कि समस्त शरीर से अशुद्ध रक्त को शुद्ध होने के लिये हृदय में लाया करें। हृदय उस रक्त को शुद्ध करता है और शुद्ध रक्त को धमनियों द्वारा समस्त शरीर में वापिस भेज दिया करता है। रक्त अशुद्ध क्यों होता है उसका हेतु यह है कि समस्त शरीर के व्यापारों में उसका प्रयोग होता है और उपयोग में आने से अशुद्ध हो जाता है।

शुद्ध और अशुद्ध रक्त का भेद

शुद्ध रक्त में कुछ चमक लिये हुए अच्छी सुर्खी होती है परन्तु जब अशुद्ध हो जाता है तो उसमें कुछ मैलापन आ जाता है। शुद्ध रक्त में ऑक्सिजन (Oxygen) काफी मात्रा में रहता है, परन्तु काम में आने से जब यह अशुद्ध हो जाता है तब उसमें आक्सिजन की मात्रा नाम मात्र रह जातीहै और उसकी जगह एक विषैला वायु (Carbonic Acid Gas) रक्त में आ जाता है और इसी परिवर्तन से रक्त का रंग मला, स्याही-माइल हो जाता है।

फेफड़े का काम

हृदय में जब अशुद्ध रक्त शिराओं के द्वारा पहुँचता है तो हृदय उसे फेफड़े में भेजता है। यहीं से फेफड़े का काम शुरु होता है। फेफड़ा स्पंज की भांति असंख्य छोटे २ घटकों (Cells)

का समुदाय है। एक शरीर-वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि यदि लम्बाई-चौड़ाई में फेफड़ों के इन कणों (घटकों) को फैला दिया जावे तो उसका विस्तार १४ हजार वर्ग फीट होगा। वे कण एक मांसपेशी (डाइफ्राम) की चाल से खुलते और बन्द होते रहते हैं। जब यह कण खुलते हैं तो एक ओर से तो हृदय से अशुद्ध रक्त और दूसरी ओर से श्वास के द्वारा लिया हुआ शुद्ध वायु दोनों मिलकर उन्हें भर देते हैं। अब इन कणों में इस प्रकार से अशुद्ध रक्त और शुद्ध वायु दोनों एकत्र हो जाते हैं तब प्रकृति का एक विलक्षण नियम काम करता है और वह नियम यह है कि जिसमें जो वस्तु नहीं होती वह उसी को दूसरे से अपनी ओर खींचती है। रक्त में तो शुद्ध वायु (औक्सिजन) नहीं है और श्वास के द्वारा लिये हुये वायु में कार्बन वायु नहीं है। इन दोनों में उपर्युक्त नियम काम करता है तो

उसका परिणाम यह होता है कि रक्त में से कार्बन वायु निकल कर श्वास के वायु में और श्वास के द्वारा आये हुये वायु में औक्सिजन निकल कर रक्त में चला आता है। फल यह होता है कि रक्त इस प्रकार शुद्ध और श्वास के द्वारा आया हुआ वायु शुद्ध हो जाता है। अब अशुद्ध रक्त तो हृदय में जाकर धमनियों द्वारा समस्त शरीर में चला जाता है और अशुद्ध वायु निःश्वास के द्वारा बाहर निकल जाता है। यह कार्य प्रतिक्षण हुआ करता है।

हृदय की धड़कन

हृदय की धड़कन क्या वस्तु है? एक वार हृदय से रक्त का शुद्ध होने केलिए फेफड़े में जाना और फिर फेफड़े से शुद्ध होकर रक्त का हृदय में वापिस आना बस इन्हीं दोनों क्रियाओं से हृदय में एक धड़कन बनती है। औसतन एक मिनट में २७

धड़कन एक प्रौढ़ पुरुष के हृदय में हुआ करती हैं। विशेष अवस्थाओं में तथा आयु के अन्तर से भी धड़कनों की मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है। आम तौर से एक सेकण्ड से कम समय में ही एक वार रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में आता और शुद्ध होकर वापिस चला जाता है। एक शरीर-वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि इस प्रकार २४ घण्टे में २५२ मन रक्त हृदय से फेफड़े में आता है और इतना ही शुद्ध होकर फेफड़े से हृदय में वापिस चला जाता है। इस धड़कन की आवाज "लूबडप" शब्दों के उच्चारण जैसी होती है। जब हृदय संकुचित होकर रक्त निकलता है तो 'लूब' के सदृश ध्वनि होती है और फैलाकर जब रक्त ग्रहण करता है तो 'डप' शब्द सी ध्वनि होती है। इन दोनों ध्वनियों में समय का कुछ अन्तर अवश्य होता है परन्तु इतना थोड़ा कि दोनों शब्द मिले हुए से ही मालूम होते हैं और विशेषज्ञों

के सिवाय साधारण लोग इस अन्तर को नहीं ख्याल कर सकते। अस्तु, अब विचारणीय बात यह है कि फेफड़े में शुद्ध वायु न पहुंचने का परिणाम क्या होता है।

यदि हृदय से रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़े में जावे, परन्तु श्वास के द्वारा पर्याप्त वायु फेफड़े में न पहुंचे अथवा सब कोषों (कणों) में जहां रक्त पहुँच चुका है, शुद्ध वायु न पहुँचे तो उसका परिणाम क्या होगा ? फेफड़े के मुख्यतया तीन भाग हैं—(१) ऊपरी भाग जो प्राय: गर्दन तक है, (२) मध्यभाग जो दोनों ओर हृदय के इधर-उधर है, (३) निम्न भाग जो "डायेफ्राम" (मांस पेशी) के ऊपर दोनों ओर है। साधारण रीति से जो श्वास लिया जाता है वह पूर्ण श्वास नहीं होता, इसलिए फेफड़े के ऊपरी भाग में श्वास द्वारा वायु नहीं पहुंचता तो ऊपरी भाग फेफड़े का रोगी होना शुरू होता है और उसके इस

प्रकार त्रुटिपूर्ण हो जाने से एक रोग हो जाता है जिसे ट्यूबरक्यूलोसिस (Tuberculosis) या तपेदिक कहते हैं और जब इसी प्रकार मध्य और निम्न भाग फेफड़ों के बेकार और त्रुटिपूर्ण होने लगते हैं तो उसके परिणाम में खांसी, दमा, निमोनिया, जीर्णज्वर आदि अनेक रोग, जो फेफड़ों से सम्बन्धित हैं, होने लगते हैं।

एक और भयंकर परिणाम

इस प्रकार पर्याप्त वायु फेफड़ों में न पहुँचने से जहां एक ओर फेफड़ों से संबन्धित रोग उत्पन्न होते हैं तो दूसरी ओर उसका परिणाम यह भी होता है कि हृदय से जो रक्त शुद्ध होने के लिये फेफड़ों में आता है वह विना शुद्ध हुये अशुद्ध ही हृदय में वापिस चला जाता है। हृदय भी उसे रोक नहीं सकता। वहां से वह धमनियों के द्वारा समस्त शरीर में पहुँचता है। इसका फल रक्त-

विकार होता है। रक्त के विकृत होने से मामूली रोग खाज (खुजली, खारिश) से लेकर भयंकर रोग कुष्ठ तक हो जाते हैं। इसलिये इन सब दुष्परिणामों से बचने के लिए आवश्यक है कि फेफड़े वायु से पूरित होते रहें और उनका कोई भी कण (कोष) ऐसा न रहने पावे जहां वायु न पहुंच सके। यहीं से प्राणायाम की आवश्यकता का सूत्रपात होता है।

प्राणायाम की आवश्यकता

प्राणायाम के द्वारा मनुष्य के भीतर जब वह श्वास बाहर रोक देता है तब श्वास लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है। उसका फल यह होता है कि श्वास भीतर लेते समय श्वास वेग के साथ तेज हवा या आंधी के सदृश फेफड़े में पहुंचता है। और जिस प्रकार आंधी या तेज हवा नगर के कोने-कोने में प्रवेश करती है उसी

प्रकार वेग के साथ श्वास के द्वारा भीतर लिया हुआ वायु फेफड़ों के एक एक कोष तक पहुँच जाता है और उससे न तो फेफड़े ही में कोई खराबी आती है और न रक्त ही में कोई विकार उत्पन्न होने पाता है। अस्तु। देख लिया गया है कि प्राणायाम शारीरिक उन्नति का हेतु ही नहीं, किन्तु मुख्य हेतु है। इसलिए स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक नर-नारी के लिये आवश्यक है कि वे प्राणायाम करें। बहुत वृद्ध पुरुष जो प्राणायाम न कर सकें उन्हें गहरे श्वास लेने का अभ्यास नित्य प्रति १० मिनट तक करना चाहिये। छोटे बच्चे जो प्राणायाम नहीं कर सकते उन्हें दौड़ने का अभ्यास करना चाहिये। उससे एक दरजे तक प्राणायाम की जरूरत पूरी हो जाती है।

प्राणायाम से सूक्ष्म शरीर की शुद्धि

प्राणायाम से मनचित्तादि के मल दूर होते

हैं। मनुस्मृति में कहा गया है :—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥
मनु० ६।७१॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से (सुवर्णादि) धातुओं का मल नष्ट हो जाता है वैसे ही प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं। मानसिक उन्नति के लिए दो ही बातों की जरूरत होती है। एक मन आदि से विकारों का दूर होना, दूसरे, चित्त की एकाग्रता प्राप्त होना। इन दोनों की सिद्धि प्राणायाम से हुआ करती है। इस प्रकार प्राणायाम सूक्ष्म शरीर (मन आदि) की उन्नति का भी कारण है। प्राणायाम के इस प्रकार अभ्यास करने से स्थूल शरीर के भीतरी अवयवों का और सूक्ष्म शरीर की उन्नति होने से मनुष्य चौथे कर्त्तव्य की जो अपने सम्बन्ध

में रखता है, पूर्ति होती है।

पांचवें कर्त्तव्य की पूर्ति अघमर्षण मन्त्रों से होती है। अघमर्षण मन्त्रों में जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ इसका वर्णन है। जगत् की रचना इतनी महत्वपूर्ण और स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति उसे सुगमता से देख और उसका महत्त्व अनुभव कर सकता है। जगत् की विलक्षण रचना जगत् में उत्पन्न प्रत्येक वस्तु से प्रकट होती है। वृक्षों पर दृष्टि डालिये तो जितने प्रकार के वृक्ष हैं, सबका रंग और सबकी पत्तियों का आकार भिन्न है। कितने विलक्षण ढंग से नीबू खट्टापन, ईख मिठास, मिर्च कड़वापन और प्रत्येक वृक्ष अपना-अपना स्वाद भूमि से ले लिया करते हैं, प्रत्येक की कितनी विलक्षण कार्य प्रणाली है जो देखने और समझने ही से सम्बन्ध रखता है। एक परमाणु किस प्रकार अपने भीतरी केन्द्र और उसके चारों ओर विद्युत्-कणों को भ्रमण

में रखता हुआ सूर्यमंडल का नमूना बना हुआ है। यह ऐसी बात है जो बड़े से बड़े वैज्ञानिक को भी चकित कर रही है। सूर्य को दिन में काले काँच के टुकड़ों को आंखों के सामने रखकर देखो तो सूर्य्य सदैव एक प्रकार की गति में दिखाई देगा। इस गतिमय सूर्य्य को ध्यान में रखते हुए रात्रि में आकाश पर दृष्टि डालो तो इस प्रकार की गति करने वाले असंख्य सूर्य्य दिखाई देंगे। ग्रह और उपग्रह की गणना का तो जिक्र ही क्या सूर्य्यों की गणना भी आज तक बड़े से बड़े ज्योतिषी नहीं कर सके। अर्वाचीन ज्योतिषियों ने अवश्य यह जानने का यत्न किया है कि हमारे सूर्य्य से कम से कम २६०० शंख से कुछ अधिक मीलों की दूरी तक कोई और दूसरा सूर्य्य नहीं है यदि इसी संख्या को दो सूर्य्यों के बीच का अन्तर ठहराया जावे और इस बात को ध्यान में रखा जावे कि सूर्य्य असंख्य हैं फिर विचार किया जावे कि यह

ब्रह्माण्ड कितना विस्तृत है तो मानवी बुद्धि की आंखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं और उन्हें इधर उधर कुछ दिखाई नहीं देता और फिर जब पुरुष सूक्त के इस मन्त्र पर विचार करते हैं कि: —

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

यजुर्वेद ३१ । ३

अर्थात्–(अस्य) ईश्वर का (एतावान्) यह (महिमा) महत्वपूर्ण सामर्थ्य है । (अतः) इस ब्रह्माण्ड से भी (पुरुषः) यह व्यापक ईश्वर (ज्यायान्) महान् है। (च) और (अस्य) ईश्वर का (विश्वा भूतानि) यह समस्त ब्रह्माण्ड (पादः) एक अंश है (अस्य त्रिपाद्) उसके तीन अंश (अमृतम् दिवि)अपने प्रकाशमय अमर स्वरूप में है–तो उस (ईश्वर)की महत्ता के सामने मनुष्य का शिर झुक जाता है और हृदय प्रेम से पूरित हो उठता है

और अनायास उसकी जबान से निकल जाता है:--

अणोरणीयान्महतो महीयान् (कठो० २।२०

प्रभो ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् हैं। मनुष्य के हृदय की यह अवस्था होने पर उसमें श्रद्धा का उच्च भाव उत्पन्न हो जाता है और आस्तिकता के श्रेष्ठ भाव हृदय में जागृत हो जाते है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर प्राणी निष्पाप हो जाता है। पाप की प्रवृत्ति इस श्रद्धाग्नि से जल-भुनकर नष्ट हो जाती है। अघ-मर्षण मन्त्रों का यही उद्देश्य हैं। इस अवस्था को उत्पन्न कर लेना मनुष्य का पांचवां और अन्तिम कर्त्तव्य है जो उसे अपने सम्बन्ध में करना चाहिए। यहां संध्या का पहला भाग समाप्त हो जाता हैं। मनुष्य के अपने से सम्बन्धित कर्त्तव्यों का बतला देना इस भाग का उद्देश्य है। इस भाग का निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को अपने सम्बन्ध में इन पांच

कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए —

(१) इन्द्रियों को बलवान् बनाना।

(२) यश वाला बनाना।

(३) उन्हें पवित्र बनाना।

(४) स्थूल शरीर के आन्तरिक अवयवों और सूक्ष्म शरीर को भी पुष्ट और शुद्ध बनाना।

(५) ईश्वर के प्रति हृदय में श्रद्धा के उच्च भाव उत्पन्न करना।

दूसरा कर्त्तव्य

मनुष्य को अन्यों के साथ क्या करना चाहिये।

संध्या के मनसापरिक्रमा के ६ मन्त्रों में इस दूसरे कर्त्तव्य का विधान किया गया है। मनसा-परिक्रमा का भाव है कि मन में ईश्वर के सभी दिशाओं में परिपूर्ण होने अर्थात् सर्वव्यापकता के भावों को जागृत कर लेना। इन मन्त्रों में ईश्वर

को न केवल सम्पूर्ण दिशाओं में परिपूर्ण देखा गया है किन्तु उसे इस रूप में भी देखा गया है कि वह सभी ओर से हमारी रक्षा करता है। ऐसे रक्षक प्रभु को नमस्कार करते हुए उससे याचना की गई है कि —

योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं
द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

जो कोई हमसे द्वेष करता है और जिस किसी से हम द्वेष करते हैं ईश्वर 'आप' उस द्वेष को नष्ट कर देवें जिससे न हम किसी से द्वेष कर सकें और न कोई हम से द्वेष कर सके। जाति या समाज में झगड़ों के उत्पन्न होने का कारण परस्पर का ईर्ष्या-द्वेष ही हुआ करता है। यदि ईर्ष्या-द्वेष बाकी न रहे तो फिर सभी प्रकार के झगड़े शांत हो सकते हैं और झगड़ों के शान्त हो जाने से सद्भाव स्था-

पित होकर परस्पर भ्रातृ-प्रेम उत्पन्न होकर चिरस्थायिनी शांति की उत्पत्ति होती है। यहां स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि संध्या तो हम करते हैं। इसलिये यह सम्भव है कि हमारे भीतर से अन्यों के प्रति द्वेष भाव का नाश हो जाय, परन्तु अन्यों के हृदय का द्वेष किस प्रकार नष्ट हो सकता है और इसी प्रश्न का ठीक उत्तर न समझकर कोई उपर्युक्त वाक्य का अर्थ यह किया करते हैं कि जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उस व्यक्ति को ईश्वर नाश कर देवे, परन्तु मेरी तुच्छ सम्मति में इस प्रकार के अर्थ से जहां मन्त्र का उच्च भाव नीचा होता है, वहां पक्षपात की भी गन्ध आतीहै द्वेष असल में पातक है और वह किसीको किसी से नहीं करना चाहिये और जहां भी इस (द्वेष) का अस्तित्व हो,नष्ट हो जाना चाहिये–योगदर्शन में कहा गयाहै–'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर

त्यागः।'' अर्थात् जब मनुष्य मन, वाणी और अमल तीनों से अहिंसक हो जाता है तो उसके लिये सभी प्राणी बैर का त्याग करदेते हैं। यदि इसी मर्यादा के अनुसार एक प्राणी अपने हृदय को द्वेष से खाली कर देता है तो उसका आवश्यक फल यह होगा कि उसकी निर्दोषता उसकी आंखों, उसकी आकृति और उसकी सभी बातों से अन्यों पर प्रकट होने लगेगी और आवश्यक रीति से उसका प्रभाव अनुभू अर्थात् अनुभवकर्त्ता पर यह होगा कि उसका हृदय भी ऐसे व्यक्ति के लिये द्वेष रहित हो जायगा। जगत् में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है। भेड़िये मनुष्य के बच्चों को खाने के लिये उठा ले जाते हैं, परन्तु बालकों की निर्दोष आँखों का उन पर प्रभाव यह पड़ता है कि बजाय मारने के उनकी पर-वरिश करने लगते हैं। ऐसे अनेक बच्चे जिनका पालन-पोषण भेड़ियों ने किया था, बरेली अना-

थालय तथा अन्य स्थानों पर आ चुके हैं और अनेक पुरुष स्त्रियों ने उन्हें अपनी आंखों से देखा भी है 'हर्ष चरित' में आता है कि राजा हर्षवर्धन जब दिवाकर की तपोभूमि में गये तो उन्होंने हिंसा त्यागे हुये एक शेर को देखा जो आश्रमवासियों के साथ मिल जुल कर रहा करता था। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् थोरियो (Thoreau) के लिये भी कहा गया है कि उसने अहिंसा की सिद्धि की थी और फल यह था कि सांप बिच्छू, शहद की मक्खी आदि उसके शरीर के सम्पर्क में आजाने पर भी उसको कष्ठ नहीं देते थे, इसी लिये सन्ध्या करने वालों के लिए आवश्यक है कि वे अन्यों का विचार छोड़ कर अपने हृदय को दोषरहित करने का यत्न करें। इसीलिए एक वार की सन्ध्या में ही ६ बार इस आवश्यक बात को दुहराया, तिहराया गया है। ऐसा करने से वे अपने उस कर्त्तव्य का पालन कर

सकेंगे जो उनको अन्यों के सम्बन्ध में पूरा करना है। जिस समय उनके हृदय अन्यों के लिये द्वेष रहित हो जावेंगे तो अन्य आवश्यक बातें, जो समाज या जाति बनाने के लिये अपेक्षित हैं, वे उनका स्वयमेव पालन करने लगेंगे।

तीसरा कर्त्तव्य
मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में क्या करना चाहिए ?

सन्ध्या में आये हुये उपस्थान के मन्त्रों में इस तीसरे कर्त्तव्य का, कि मनुष्य को ईश्वर के संबंध में क्या करना चाहिये, विधान है। उपस्थान और उपासना दोनों शब्द प्रायः पर्य्यायवाचक से हैं और दोनों का एकही भाव है अर्थात् ईश्वर के समीप होना।

मनुष्य को ईश्वर के समीप होने की क्यों जरूरत है और क्यों उसे ईश्वर की उपासना

करनी चाहिये, इसका कारण यह नहीं है कि ईश्वर हमारी उपासना का हाजतमन्द है। बल्कि इसका मुख्य हेतु यह है कि मनुष्य के अधिकार में अपने को अच्छा बनाने के जितने साधन हैं उनमें यह श्रेष्ठतम साधन है। मनुष्य अपने जीवन का कुछ उद्देश्य रखताहै जिसका वर्णन इस व्याख्यान के प्रारम्भ में हो चुका है। उद्देश्य कीपूर्ति केलिये आदर्शकी जरूरत होतीहै। अच्छे से अच्छे मनुष्य का आदर्श कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो वह त्रुटि से रहित नहीं हो सकता। परन्तु ईश्वर का आदर्श सदैव त्रुटिरहित होता है इसलिये ईश्वर को आदर्शरूप में रखकर उसके गुणों को अपने भीतर लाने के लिये उनका सार्थक जप करना चाहिये, उन गुणों के अर्थ की भावना मन में करने से जैसी कि जप की मर्यादा है :-

तज्जपस्तदर्थभावनम् (योगदर्शन)

मनुष्य के भीतर उन गुणों का प्रभाव पड़ता

है और क्रमशः वे उसके भीतर आने लगते हैं। जितने २ गुणों का समावेश मनुष्य के आत्मा में इस प्रकार होता जावेगा उतना ही वह ईश्वर के समीप होता जावेगा और जितना समीप होता जावेगा उतना ही अधिक गुणवान् बनता जावेगा। यही तीसरे कर्त्तव्य की पूर्ति का मूल उद्देश्य है।

उपस्थान के मन्त्रों में ईश्वर के गुणों का इस प्रकार वर्णन है—

मन्त्र	गुण
पहला मन्त्र—	(१) तमसस्परि—अन्धकार से रहित
	(२) उत्तर—प्रलय के बाद रहने वाला।
	(३) देव—प्रकाशस्वरूप।
	(४) सूर्य्य—प्रकाश पुंज।
	(५) ज्योतिरुत्तमम्—अलौकिक प्रकाशमय।

(६) स्वः—सुखस्वरूप ।

दूसरा मन्त्र—(७) जातवेदाः - वेद (ज्ञान) का उत्पन्न करने अथवा देनेवाला ।

तीसरा मन्त्र (८) चक्षुः–द्रष्टा ।

चौथा मन्त्र (९) (शुक्र)–पवित्र ।

पांचवां मन्त्र (१०) भूर्भुवःस्वः–सच्चिदानन्द ।

(११) सविता–उत्पादक ।

(१२) वरेण्यम्–ग्रहण करने योग्य

(१३) भर्गः–शुद्ध ।

(१४) देव–ज्योतिर्मय ।

छठा मन्त्र—(१५) शम्भु–आनन्दमय ।

(१६) मयोभव–आनन्दस्वरूप ।

(१७) शङ्कर–कल्याणकारी ।

(१८) मयस्कर–सुखदाता ।

(१९) शिव–मङ्गलस्वरूप ।

(२०) शिवतर–अत्यन्त आनन्द-दाता ।

मनुष्य के भीतर इन बीस गुणों में से यदि दो चार का भी समावेश हो जावे तो उसका कल्याण हो सकता है। उपस्थान के मन्त्रों का उद्देश्य भी यही है कि मनुष्यों में प्रभु की दिव्य ज्योति आवे और उनका कल्याण कर देवे।

तीन आवश्यक साधन

इन तीन कर्त्तव्यों के पालन करने के लिए तीन बातों की जरूरत हुआ करती है—

पहली आवश्यकता—मनुष्य के पास समय होना चाहिये जिसमें इन कर्त्तव्यों की पूर्ति का यत्न किया जा सके। इसलिये उपस्थान के चौथे मंत्र में १०० वर्ष आयु-प्राप्ति की प्रार्थना की गई है। इनका भाव यह नहीं है कि मनुष्य १०० वर्ष तक निरन्तर ईश्वरोपासना ही किया करे और कुछ न करे। इस १०० वर्ष की आयु में संध्या के लिये वास्तव में बहुत थोड़ा समय रक्खा

गया है। दिन के २४ घण्टों में केवल २ घण्टे प्रातः और सायंकाल मनुष्यों को ईश्वरोपासना और आत्मचिन्तन में व्यतीत करने चाहिएं,बाकी समय में वह जो शुभ कर्म चाहे सो कर सकता है।

सन्ध्या दो समय करनी चाहिए

सन्ध्या दो ही समय करनी चाहिए, ३, ४, ५, ६ वार नहीं। कोई मनुष्य यदि योगी बनकर चाहे तो वह सारी आयु ईश्वर-चिन्तन में लगा सकता है, इसका कभी निषेध नहीं किया जा सकता। परन्तु सन्ध्या का वह नियम जिसे प्रत्येक प्राणी पालन कर सके,यह है कि आवश्यक रीति से प्रातः सायं प्रत्येक नर नारी को सन्ध्या करनी चाहिए। इसके लिए कुछेक प्रमाण दिये जाते हैं :—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः

प्रातः सौमनस्य दाता । वसोवसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।१।

अथर्व० १६।५५ । ३॥

शब्दार्थ—(सायं सायम्) सायङ्काल (नः) हमारे (गृहपति) घरों का रक्षक और (प्रातः प्रातः) प्रातःकाल (सौमनस्थ) सुख का (दाता) देने वाला (अग्निः) ईश्वर (वसोःवसोः) उत्तम २ प्रकार का (वसुदानः) ऐश्वर्य देने वाला (एधि) हो । इन दोनों कालों में (त्वा) तुझको (इंधानाः) प्रकाशित करते हुए (वयम्) हम लोग (तन्वम्) शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें ।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता । वसोर्वसोर्वसुदान एधींधानास्त्वा शतं हिमा ऋधेम ॥२॥

अथर्व० १६ । ५५ ॥ ४ ॥

अर्थात्—प्रातःकाल हमारे घरों का रक्षक और सायंकाल सुखदाता ईश्वर उत्तम प्रकार के ऐश्वर्य का देने वाला हो। (त्वा) आप का (इन्धानाः) प्रकाश फैलाते हुए (शतं हिमाः) सौ वर्ष तक (ऋधेम) हम उन्नति करते रहें।

उपत्वाऽग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥३॥

सामवेद। १। १। २। ४॥

अर्थात्—हे (अग्ने) ईश्वर (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) प्रातः सायम् (धिया) भक्ति से (नमः) नमस्कार (भरन्तः) करते हुए (त्वा उप) आपके समीप (आ+इमसि=एमसि) आते हैं।

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्या-

मुपासीत। उद्यं तम इत्यस्तं यन्तमादित्यमभिध्यायन् ॥४॥षड्विंश ब्राह्मण प्र० ४।खं० ५॥

अर्थात्-इसलिये दिन रात के मेल के समयों में विद्वान् सन्ध्योपासना करे। उदय और अस्त होते हुए सूर्य की ओर ध्यान देकर अर्थात् प्रातःकाल पूर्व और सायंकाल पश्चिम की ओर मुंह करके सन्ध्या करे।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥

मनु० २।१०३॥

अर्थात्—जो प्रातःकाल की संध्या न करे और जो सायङ्काल की भी न करे वह संपूर्ण द्विजों के कर्म से बहिष्कार करने योग्य है।

सन्ध्या के समय की उपयोगिता

(सं) उत्तम प्रकार से (ध्यै) ध्यान करना यह भाव है जो सन्ध्या शब्द अपने भीतर किसी खास समय को नियत कर देने का भाव नहीं रखता। सिवाय इसके जिस समय में उत्तम रीति से ईश्वर का ध्यान किया जा सके उसी का नाम संध्या काल है। इसका एक कारण है और बड़ा महत्वपूर्ण कारण है। वह कारण यह है कि सन्ध्या केवल भारतवर्ष के लिये नहीं जहां १२-१२ घण्टे के औसतन दिन रात हुआ करते हैं बल्कि समस्त भूमध्य के लिये है जिसमें ऐसे देश भी सम्मिलित हैं जहां कई दिन और कई मास के बराबर दिन और रात हुआ करते हैं। इस लिये सन्ध्या शब्द का अभिप्राय तो ऐसा है जो प्रत्येक देश और स्थान के लिये लागू हो सके, परन्तु भारतवर्ष के लिये यहां की अवस्था और

सूर्य के उदय अस्त के समयों पर विचार कर ब्राह्मण ग्रन्थकारों और स्मृतिकारोंने प्रातः और सायं दिन और रात के दोनों सन्धिकालों को सन्ध्या का काल नियत किया है। इन कालों की बड़ी उपयोगिता यह है कि प्रत्येक सन्धि-काल में उससे पहले बीतने वाले दिन या रात का काम समाप्त हो जाता है, परन्तु उसके बाद आने वाले रात या दिन का प्रारम्भ नहीं होता। इस लिये यह समय वह होता है जिसमें न दिन के कामों की चिन्ता होती है न रात्रि के कार्य्यों की। ऐसा और इतना उपयोगी समय इन दो समयों के सिवाय और कोई नहीं होता। मध्याह्न का समय तो अत्यन्त चिन्ता और थकावट का होता है। ऐसी चिन्तित और थकावट की अवस्था में कोई साधारण पुरुष-स्त्री ईश्वर का ध्यान नहीं कर सकते। वेद में जहां इस प्रकार के वाक्य आये हैं कि —

**मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत**

ऋग्वेद ८ । १ । २६ ॥

अर्थात् (हे वसो) ईश्वर (सूरे उदिते) सूर्योदय के समय (दिवः मध्यन्दिने) दिन के मध्य में (अपि शर्वरे) रात्रि में (प्रपित्वे) सायंकाल के समय (मम स्तोमासः) मेरे स्तोत्र (त्वा) तुझको अवृत्सत) मेरी ओर करें। इस मन्त्र में दोनों रात और दिन में ईश्वर के स्तोत्र या प्रशंसा के भजन गाने का विधान किया गया है। सन्ध्या से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। अथवा जैसे यह मन्त्र है:—

**यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ।**

ऋग्वेद ८ । २७ । १६ ॥

अर्थात्—हे (प्रियक्षत्रा:) क्षत्रियो! (विश्ववेदस:) हे सर्वधन विद्वानो! (अद्य) अभी (यद्) या सूर्य उद्यति) सूर्य के उदय होने पर (यद्) या (निम्रुचि) सूर्यास्त के समय (प्रबुधि) या प्रबोधकाल (दिव: मध्यन्दिने) या दिन के मध्य समय (ऋतं दध) आप सत्यता को धारण करें।

इस मन्त्र में भी प्रत्येक समय मनुष्यों को (ऋत) तीनों काल में एक जैसी रहने वाली सच्चाई के धारण करने का विधान है। इसका भी सन्ध्या से कुछ सम्बन्ध नहीं है। ऐसे भी अनेक मन्त्र हैं जिनमें मनुष्यों को सायं प्रातः और मध्य दिन में मेधा धारणावती बुद्धि के धारण करने का उपदेश है। देखो अथर्व० ६।१०८।५।।

"मेधां सायं मेधां प्रात:० इत्यादि।" या जिनमें इसी प्रकार प्रत्येक समय श्रद्धा के धारण

कराने का विधान है। (देखो ऋग्वेद १०।१५१।५। श्रद्धां प्रातर्हवामहे० इत्यादि)। इनका भी सन्ध्या से कुछ सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य को दिन रात प्रत्येक समय ही अच्छे गुणों को ग्रहण करने के लिये यत्नवान् रहना चाहिये।

दूसरी आवश्यकता–मनुष्य को 'अदीन' अर्थात् स्वतन्त्र होने की जरूरत है जिससे वह स्वतन्त्रता के साथ सन्ध्या में वर्णित तीनों कर्त्तव्यों का पालन कर सके। कर्ता के लिए पाणिनि के "स्वतन्त्रः कर्ता" के आदेशानुसार स्वतन्त्र होना आवश्यक है।

इसीलिए उपस्थान के चौथे मन्त्र ही में "अदीनाः स्याम शरदः शतम्" १०० वर्ष तक स्वतन्त्र रहने की भी ईश्वर से प्रार्थना कीगईहै।

तीसरी आवश्यकता–मनुष्य को इन तीनों कर्त्तव्यों के पालन करने लिए जहां समय और स्वतन्त्रता की जरूरत है उसके साथ ही तीसरी

जरूरत "बुद्धि" की है। विना बुद्धि के मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। इसीलिये उपस्थान के पश्चात् पांचवें (गायत्री)मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हमें मेधा अर्थात् प्रेरित की हुई बुद्धि प्राप्त हो। इन तीनों साधनों के प्राप्त होने से मनुष्य अपने तीनों कर्त्तव्यों का समुचित रीति से पालन कर सकता है।

सन्ध्या की इस व्याख्या पर दृष्टिपात करने से प्रत्येक समझदार नर-नारी इस बात को भली भांति समझ सकेंगे कि सन्ध्या कितना आवश्यक कर्त्तव्य है और इसीलिए उसके एक-एक शब्दार्थ को समझते और विचार करते हुये बड़ी श्रद्धा और प्रेम से प्रत्येक को सन्ध्या करनी चाहिए।

संध्या के बाद भजन द्वारा ईश्वर प्रार्थना

भजन [३]

हे दयामय ! हम सबों को, शुद्धताई दीजिए।
दूर करके हर बुराई को, भलाई दीजिए ॥१॥

ऐसी कृपा और अनुग्रह हम पै हो परमात्मा ।
हों निवासी हर जगह के सब के सब धर्मात्मा ॥
हो उजाला सबके मन में ज्ञान के प्रकाश से ।
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से ॥३॥
खोटे कर्मों से बचें सब, तेरे गुण गावें सदा ।
छूट जावें दुःख सारे, पावें जन सुख सम्पदा॥४॥
सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों ।
शुभ कर्म में होवें तत्पर, दुष्ट गुण सब दूर हों ॥
यज्ञ हवन से हों सुगन्धित, इस धरा के सब देश ।
वायु जल सुखदाई होवें, जायं मिट सारे क्लेश ॥
वेद धर्म प्रचार में, होवें सभी पुरुषार्थी ।
हो परस्पर प्रीति सब में,और बनें परमार्थी॥७॥
लोभी कामी और क्रोधी,कोई भी हम में न हो ।
सर्व व्यसनों से बचें, और छोड़दें मद मोह को ॥
अच्छी संगति में रहें और वेद मार्ग पर चलें ।
तेरे ही होवे उपासक, सब कुकर्मों से बचें ॥६॥

कीजिए सबके हृदय को शुद्ध अपने ज्ञान से ।
मान भक्तों में बढ़ाओ,अपनी भक्तिदान से।।१०।।
शम,दम,क्षमा,तप, धीरता ब्रह्मचर्यको धारण करें
जब तक जियें हम धर्मयुत,आचार व्रत पालन करें
तीन पापों से बचा, स्वाधीनता का दान कर ।
विश्वसेवा के लिए,उत्साह का वरदान कर।।१२।।
सर्व रक्षक पथ प्रदर्शक, न्यायकारी मान कर ।
आपको ही नितभजें,हम सर्वव्यापक जानकर।१३।

देव-यज्ञ

संध्या स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करने के अनन्तर देवयज्ञ के लिए प्रवृत्त होना चाहिए। देवयज्ञ हवन को कहते हैं । इसकी महिमा आर्य ग्रंथों में बहुत कुछ वर्णित है । एक जगह लिखा है कि—

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः

अर्थात्—स्वर्ग (सुख शान्ति)की इच्छा वाला पुरुष

अग्निहोत्र करे। ऋषि दयानन्द स्वकृत सत्यार्थ-प्रकाश में हवन की महिमा दर्शाते हुए लिखते हैं कि—

दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियोंको दुःख और सुगन्धयुक्त वायु और जल से आरोग्यता और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है। घर में रक्खे पुष्प, अतर आदि के सुगन्ध में वह सामर्थ्य नहीं है कि दूषित गृहस्थ वायु को निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही की सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश करा देता है। ·· जिस मनुष्य के शरीर से जितनी दुर्गन्ध उत्पन्न होकर वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य

को होता है। इसलिए उस पाप निवारणार्थ उतना वा उससे अधिक सुगन्ध वायु और जल में फैलाना चाहिये।'

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

अनेक डाक्टर वैद्य महानुभावों का अनुभव है कि हैजे और प्लेग के दिनों में जिन घरों वा मुहल्लों में हवन यज्ञ विशेष रूप से होता है वे घर और मुहल्ले संक्रामक रोगों से सुरक्षित रहते हैं। अनेक वैद्यक शास्त्र और धर्म ग्रन्थों का मत है कि हवन के द्वारा भूमि में अन्न की उपज-शक्ति अत्यन्त बढ़ती है। हवन से हानिकारक कीटाणुओं का नाश होता है, वायु शुद्ध होती है, जल शुद्ध होता है। शरीर की जीवन धारण-शक्ति अर्थात् प्राणशक्ति (Vitality) बढ़ती है। रोगकारक कीटाणुओं के नष्ट हो जाने से रोग भी नष्ट हो जाते हैं। वृष्टि परिमित करने में हवन बड़ा सहायक है।

हवन की प्रारम्भिक विधि सामान्य प्रकरण में आगे वर्णित है। यह दैनिक यज्ञ दो भागों में विभक्त है (१)जो प्रातःकाल के हवन मन्त्रों से और (२) जो सायङ्काल के हवन मन्त्रों से किया जाता है। वे मन्त्र ये हैं:

प्रातःकाल के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।
ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।
ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

यजुः ३।१०॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ यजु० ३। १०॥

(सूर्यः) सकलोत्पादक (ज्योतिः) जिससे प्रकाश किया जाता वा जो स्वयं प्रकाशमान सर्वविभासक है। (ज्योतिः सूर्यः) सर्वविभासक ही सर्वोत्पादक है (स्वाहा)

उसी की आज्ञा पालनार्थ सारे संसार के उपकार के लिये यह आहुति देते हैं ॥१॥

(सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा) सर्वोत्पादक ही वर्चस् अर्थात् ज्ञानस्वरूप दीप्ति वाला सर्वावभासक तदर्थ ही आहुति है। (ज्योतिः सू०) स्वयं प्रकाशमान सर्व जगत्प्रकाशक सूर्य जगदीश्वर है तदाज्ञास्वरूप ही आहुति है।

(देवेन सवित्रा) प्रकाश सर्वोत्पादक के साथ (सजू:०) तुल्य प्रीति से सम्मिलित होते हुए (इन्द्रवत्या उषसा सजू:०) ऐश्वर्यवान् प्रातःकाल के साथ मिलते हुए (जुषाणः सूर्यो वेतु) प्रीतिपूर्वक वर्तमान सूर्य प्राप्त हो। एतदर्थ तदाज्ञा पालनस्वरूप यह आहुति है।

सायंकाल के मन्त्र

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा॥

यजु० ३। ९॥ ३। १०॥

इन मन्त्रों का अर्थ पूर्ववत् ही है। केवल अग्नि शब्द का अर्थ ज्ञानस्वरूप प्राप्तियोग और रात्रि शब्द का अर्थ अन्धकार, सायंकाल रात है।

प्रातः सायं दोनों समय के मन्त्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदं न मम॥२॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवे अपानाय इदं न मम॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमा-

दित्याय व्यानाय इदं न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य इदं न मम ॥४॥

ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

अर्थ—(प्राणाय)जीवनप्रद के लिये। (वायवे) बलवान् के लिये। (अपानाय) दु:ख नाशक। (आदित्याय) अविनाशी के लिये। (व्यानाय) सुखस्वरूप के लिये। (अग्नये) प्रकाशस्वरूप के लिये॥ (शेष पूर्ववत्).

(आपः ज्योतिः रसः अमृतम्) सर्वव्यापक प्रकाशमान साररूप अमर। (ब्रह्म, भूः भुवः स्वः)

सबसे बड़ा सच्चिदानन्द। (ओ३म्) ओ३म् संज्ञक है। (स्वाहा) उसी के आदेशस्वरूप आहुति हैं।

ॐ यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ७।
यजु० ३२। १४॥

(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप। (यां मेधां देव गणाः) जिस बुद्धि का, देवसमूह। (च पितरः उपासते) और पितृगण सेवन करते हैं अर्थात् चाहते हैं। (तया मेधया अद्य माम् मेधाविनम् कुरु) उस बुद्धि से आज मुझको बुद्धियुक्त करो।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥यजु० ३०॥१॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराण-

मेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥
यजु० ४० । १६ ।

इन दोनों मन्त्रों का अर्थ आगे लिखा जाएगा।

पूर्णाहुति

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

(ओं) ईश्वर की कृपा से। (सर्वम् वै पूर्णम्) सब ही पूर्ण होता है।

यहां पर ही प्रणीता पात्रस्थ घृत जितना कुछ हो अग्नि में प्रक्षेप कर देवे। तदनन्तर निम्न-लिखित मन्त्र से उस अग्नि का सेवन करे।

ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ।
ओं आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि ॥
ओं वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
ओं अग्ने यन्मे तन्व ऊनं तन्म आपृण ॥
पार० ॥ गृ०

(अग्ने तनूपाः असि)हे ज्ञानस्वरूप आप शरीर के रक्षक हैं। (मे तन्वम् पाहि) आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिए। (अग्ने आयुर्दा असि) हे ईश्वर आप आयु देने वाले हैं। (मे आयुः देहि) मुझे आयु दीजिए। (अग्ने वर्चोदाःअसि) हे ईश्वर आप दीप्ति के दाता हैं। (मे वर्चः देहि) मुझे दीप्ति दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वः ऊनम्) हे ईश्वर जो कुछ मेरे शरीर में कमी है। (तत् मे आपृण) उसकी पूर्ति कर दीजिये।

इस प्रकार हवन की समाप्ति कर अन्त में यथावकाश ईश्वर भक्ति के भजन गाने चाहिएं।

भजन (४] ईश्वर की स्तुति

जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादिकारण मुक्ति प्रदाता ॥१॥
अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहर्ता ॥२॥

सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्मांड सारा समाता॥
मैं लालित व पालित हूँ पितृ-स्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझसे ताता॥४॥
करो शुद्ध निर्मल मेरे आत्मा को।
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रात:॥५॥
मिटाओ मेरे भय जो आवागमन के।
फिरूं न जन्म पाता और बिलबिलाता॥६॥
बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता॥७॥
अमीं-रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूँ सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता॥८॥

भजन [५] ईश्वर-स्मरण

विश्वपति के ध्यान में जिसने लगाई हो लगन।
क्यों न हो उसको शान्ति,
क्यों न हो उसका मन मगन॥१॥

काम क्रोध लोभ मोह, शत्रु हैं महाबली ॥
इनके हनन के वास्ते
जितना हो तुझसे कर यतन ॥२॥

ऐसा बना स्वभाव को, चित्त की शान्ति से तू ।
पैदा न हो ईर्षा की आंच,
न दिल में करे कहीं जलन ॥३॥

मित्रता तू सबसे रख, त्याग के वैर भाव को ।
छोड़ दे टेढ़ी चाल को,
अपना तू ठीक कर चलन ॥४॥

जिससे अधिक न है कोई जिसने रचा है यह जगत् ।
उसका ही रख तू आश्रय,
उसकी ही तू पकड़ शरण ॥५॥

छोड़ के राग द्वेष को, मन में तू उसका ध्यान कर ।
तुझ पै दयाल होवेंगे,
निश्चय है यह परमात्मन् ॥६॥

दया स्वरूप आप हैं, आप ही का आश्रय।
कृपा दृष्टि कीजिये मुझ पै,
हो जब समय कठिन ॥७॥

मन में हो तेरे चांदना, मोक्ष का रास्ता मिले।
मार के मन जो 'केवला'
इन्द्रियों का करे दमन ॥८॥

भजन [६] ईश विनय

ओ३म् जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के सङ्कट क्षण में दूर करे ॥१॥

जो ध्यावे, फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे कष्ट मिटे तनका ॥२॥

मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न कोई, आश करूं जिसकी ॥३॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
परम ब्रह्म परमेश्वर! तुम सबके स्वामी ॥४॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता ।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्त्ता ॥५॥

तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति ।
किस विध मिलूं दयामय दीजो मुझको सुमति ॥

दीनबन्धु दुःखहर्ता तुम रक्षक मेरे ।
करुणा हस्त बढ़ाओ द्वार पड़ा हूँ तेरे ॥६॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, आर्य जनों की सेवा ॥१०॥

बलिवैश्वदेव

यदन्नं पक्वमक्षारलवणं भोजनार्थं भवेत्ते-नैव बलिवैश्वदेवकर्म कार्यम् ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥
मनु० अ० ३ । श्लोक ८४ ॥

अथ बलिवैश्वदेव कर्मणि प्रकरणम्

ओ३म् अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने । रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ॥१॥
अथर्व० का० १९ । सू० ५५ । मं० ६ ॥

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदाःपुनी हिमा ॥२॥
यजु० अ० १६। ३६॥

भावार्थ—(पुनन्तु०) इसका अर्थ देवतर्पण विषय में कर दिया जायेगा। (अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर आपकी आज्ञा से नित्यप्रति बलि वैश्वदेव कर्म करते हुए लोग(रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्ती राज्य लक्ष्मी घृत दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदन्तः नित्य आनन्द में रहें। तथा माता-पिता आचार्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीति-पूर्वक सेवा करते रहें (अश्वायेव तिष्ठते घासं) जैसे घोड़े के सामने बहुत से खाने वा पीने के पदार्थ रख दिए जाते हैं वैसे सबकी सेवा के लिए बहुत से उत्तम २ पदार्थ देवें, जिनसे वे प्रसन्न हो के हम पर नित्य प्रसन्न रहें। (मा ते अग्ने

प्रतिवेशा रिषाम) हे परमगुरु अग्नि परमेश्वर ! आप और आपकी आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचावें, किन्तु सबको अपना मित्र और अपने को सबका मित्र समझ कर परस्पर उपकार समझते रहें।

अथ होममन्त्राः

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं धन्वन्तरये स्वाहा । ओं कुह्वै स्वाहा। ओं अनुमत्यै स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । ओं स्विष्टकृते स्वाहा ।

भाषार्थ –(ओमग्न०) अग्नि शब्दार्थ कह आए हैं। (ओं सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न

और पुष्ट करने से सुख देने हारा है उसको 'सोम' कहते हैं। (ओमग्नि०) जो प्राण सब प्राणिओं के जीवन का हेतु और अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है इन दोनों को 'अग्नि-षोम' कहते हैं।(ओं वि०) यहां संसार को प्रकाश करने वाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोगों का 'विश्वे-देव' शब्द से ग्रहण होता है (ओं ध०) जो जन्म-मरणादि रोगों का नाश करने हारा परमात्मा वह धन्वन्तरि कहलाता है। (ओं कु०) जो अमावास्येष्टि को करता है। (ओं म०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्रप्रतिपादित परमेश्वर की चितिशक्ति है यहां उसका ग्रहण है। (ओं प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है वह प्रजापति कहाता है। (ओं स०) यह प्रयोग पृथ्वी का राज्य और सत्य विद्या के प्रकाश के लिये है (ओं स्वि) जो इष्ट सुख करने हारा परमेश्वर है वही स्विष्टकृत् कहाता है। ये दश अर्थ दश मन्त्रों

के हैं। अब बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। ओं सानुगाय वरुणाय नमः। ओं सानुगाय सोमाय नमः। ओं मरुद्भ्यो नमः। ओं अद्भ्यो नमः। ओं वनस्पतिभ्यो नमः। ओं श्रियै नमः। ओं भद्रकाल्यै नमः। ओं ब्रह्मपतये नमः। ओं वास्तुपतये नमः। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। ओं सर्वात्मभूतये नमः। ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥

भाषार्थ—(ओं सा०) जो सर्वैश्वर्ययुक्त परमेश्वर और जो उसके गुण हैं वे 'सानुग इन्द्र' शब्द से ग्रहण होते हैं।

(ओं सा०) जो सत्य न्याय करने वाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं वे 'सानुग इन्द्र' शब्द से ग्रहण होते हैं। (ओं सा०) जो सबसे उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त हैं वे 'सानुग वरुण' शब्दार्थ से जानने चाहियें (ओं सा०) जो पुण्यात्माओं को आनन्दित करने वाला और जो पुण्यात्मा लोग हैं वे 'सानुग सोम' शब्द से ग्रहण किये हैं। (ओं मरुत्) जो प्राण अर्थात् जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है, उनको 'मरुत्' कहते हैं। इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। (ओं अद्भ्यो०) इसका अर्थ (शन्नो देवी०) इस मन्त्र के अर्थ में लिखा है। (ओं व०) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फल आदि से जगत् का उपकार होता है उनकी भी रक्षा करनी योग्य है। (ओं श्रि०) जो सबके सेवा करने योग्य

परमात्मा है उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये। (ओं भद्र०) जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है, उसका सदा आश्रय करना चाहिए। (ओं ब्र०) जो वेद का स्वामी ईश्वर उसकी प्रार्थना उद्योग विद्या प्रचार के लिए अवश्य करनी चाहिये। जो (ओं वा०) वास्तुपति, गृहसम्बन्धी पदार्थों का पालन करने हारा मनुष्य अथवा ईश्वर है, इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये।

(ओं विश्वे०) इसका अर्थ कह दिया है। (ओं दिवा०) जो दिन में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेना और उनको देना है, सो मनुष्य जाति ही का काम है। (ओं नक्तं०) जो रात्री में विचरने वाले प्राणी हैं, उनसे भी उपकार लेना और उन्हें सुख देना है, इसलिये यह प्रयोग है।(ओं सर्वात्म०) सब व्याप्त परमेश्वर की सत्ता

को ध्यान में रखना चाहिये। (ओं पि०) माता, पिता, आचार्य, अतिथि, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजन करना चाहिये। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ पूर्व कर दिया है और 'नमः' शब्द का अर्थ आप अभिमान रहित होकर दूसरे का मान करना है।

इसके पीछे के भागों को लिखते हैं ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्
वायसानां कृमीणां च शलकैर्निर्वपेद् भुवि ॥

भावार्थ—कुत्तों, कंगालों, कुष्टि आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग २ बांट के देना और उनकी प्रसन्नता सदा करना, यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी।

पितृ-यज्ञ

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥
य० अ० १९। मं० ३९॥

द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति॥

स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्त यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान् सत्यं वदति॥
शत० का०१। अ० १। ब्रा० १। कं०४। ६॥

विद्वाँ सो हि देवाः
शत० कां० ३। अ० ७। ब्रा० ६। कं १०॥

भावार्थ—अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं।

उसके दो भेद हैं—एक तर्पण, दूसरा श्राद्ध। तर्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान्‌रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करता है सो श्राद्ध कहाता है। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष है उन्हीं में घटता है, मृतकों में नहीं। क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती। किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता इसलिए मृतकों को सुख पहुंचाना सर्वथा असम्भव है। इसी कारण विद्य-मानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है। तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं—देव, ऋषि और

पितर। उनमें से देवों में प्रमाण—(पुनन्तु०) हे जातवेदः! परमेश्वर आप सब प्रकार से मुझे पवित्र करें। तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझको पवित्र करें जिनका चित्त आप में है। उसी प्रकार आपका दिया जो ज्ञान व आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो। (पुनन्तु विश्वा भूतानि) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों। (द्वयं वा०) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होतीहैं,अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और झूठ दो कारण हैं।(सत्यमेव०)जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कर्म करने वाले हैं वे 'देव' हैं और वैसे ही झूठ बोलने, झूठ मानने और झूठ कर्म करने वाले 'मनुष्य' कहाते हैं। जो झूठ से अलग होके सत्य को प्राप्त होवें वे देववर्ग में गिने जाते हैं। और जो सत्य से अलग होके झूठ

को प्राप्त हों वे मनुष्य असुर और राक्षस कहे हैं, इससे सब काल में सत्य ही कहे, माने और करे। सत्य व्रत का आचरण करने वाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कर्म करने वाला असुर होता है। इस कारण से यहाँ विद्वान् ही देव हैं।

अथर्षिप्रमाणम्

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

यजु० अ० ३१॥ मं० ९॥

अथ यदेवानुब्रुवीत्। तेनर्षिभ्य ऋणं जायते यदेतेभ्य एतत्करोत्यृषीणां निधिगोपा इति ह्यनूचानमाहुः॥शत०का०१।अ०७।कं०३॥

अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं

आपदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते ॥

शत० कां १ । प्रपा० ३ । अ० ४। कं ३ ॥

भावार्थ - जो सबसे प्रथम प्रकट था, जो सब जगत् का बनाने वाला और जगत् में पूर्ण हो रहा है उस यज्ञ अर्थात् पूजने योग्य परमेश्वर का हृदयरूप आकाश में अच्छे प्रकार से प्रेम, भक्ति, सत्य आचरण करके पूजन करता है वही मनुष्य है। ईश्वर का यह उपदेश सबके लिये है। उसी परमेश्वर के वेदोक्त उपदेशों से जो विद्वान्, ज्ञानी व ऋषि लोग वेद मन्त्रों के अर्थ जानने वाले और अन्य भी जो मनुष्य परमेश्वर के सत्कारपूर्वक सब अच्छे ही काम करते हैं वे सुखी होते हैं।

अब इसके बाद सब विद्याओं को पढ़ के जो पढ़ाना है वह 'ऋषिकर्म' कहाता है और उसके पढ़ने और पढ़ाने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उत्तम २ पदार्थ देने से निवृत्त होता है और जो

उन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख करने वाला होता है। (निधिगोपाः यही व्यवहार अर्थात् विद्या-कोष की रक्षा करने वाला होता है। जो सब विद्याओं को जान के सबको पढ़ाता है उसको 'ऋषि' कहते हैं। (अथार्षेयं प्रवृणीते०) जो पढ़के पढ़ाने के लिए विद्यार्थी का स्वीकार करना है सो 'आर्षेय' अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है। जो उस कर्म को करते हैं उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी हो के विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करने वाला है उसका 'ऋषि' नाम होता है इस कारण इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें।

अथ पितृषु प्रमाणम्

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परि-

स्रुतम् ॥ स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन् ॥
यजु० अ० २ । मन्त्र ३४ ॥

भाषार्थ—(ऊर्ज्जं वहन्ती०) पिता व स्वामी अपने पुत्र, स्त्री व नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा दे के कहे कि (तर्पयत मे पितृन्) जो पिता पितामह आदि तथा आचार्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था ज्ञान से वृद्ध मान करने के योग्य हों उन सबके आत्माओं को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ ये हैं। (ऊर्ज्जं वहन्ती०) जो उत्तम उत्तम जल (अमृतम्) अनेकविध रस (घृत) घी (पयः) दूध (कीलालं) अनेक संस्कारों से सिद्ध किये, रोग नाश करने वाले उत्तम-उत्तम अन्न (परि-स्रुतम्) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो जिससे उनका आत्मा प्रसन्न हो कर तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे, कि जिससे तुम लोग भी

सदा प्रसन्न रहो । (स्वधा स्थ०) हे पूर्वोक्त पितर लोगो ! तुम सब हमारे अमृतरूपी पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो । और जिस २ पदार्थ की तुमको अपने लिए इच्छा हो जो २ हम लोग कर सकें उस उसकी आज्ञा सदा करते रहो। हम लोग मन वचन से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसा तुम लोगों ने बाल्यावस्था ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये जिससे हमको कृतघ्नता-दोष न प्राप्त हो।

अथ पितृणां परिगणनम्

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते क्रमशो लिख्यन्ते। सोमसदः। अग्निष्वात्ताः। बर्हिषदः। सोमपाः। हविर्भुजः। आज्यपाः।

सुकालिनः । यमराजाश्चेति ।

भाषार्थ—जो ईश्वर सोमयज्ञ में निपुण और शान्ति दमादि गुण सहित हैं वे 'सोमसद्' कहाते हैं। (अ०) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उन के गुण जान करके जिन्होंने अच्छे प्रकार अग्नि-विद्या सिद्ध की है उनको 'अग्निष्वात्त' कहते हैं। (ब०) जो सबसे उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम, दम, सत्य, विद्यादि उत्ताम गुणों में वर्त्तमान हैं उनको 'बर्हिषद्' कहते हैं। (सो०) जो यज्ञ करके सोमलता आदि उत्तम औषधियों के रस के पान करने और कराने वाले हैं तथा जो सोमविद्या को जानते हैं उनको 'सोमपा' कहते हैं। (ह०) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते और जो अन्न जलादि को शुद्ध करके खाने पीने वाले हैं उनको 'हविर्भुज' कहते हैं। (आ०) घृत, स्निग्ध पदार्थ और विज्ञान

को 'आज्य' कहते हैं जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको 'आज्यपा' कहते हैं। (सु०) मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्य-विद्या के ग्रहण और सदा उपदेश में ही जिनका श्रेष्ठ समय वर्त्तमान है उनको 'सुकालिन्' कहते हैं। (य०) जो पक्षपात को छोड़के सदा सत्य व्यवस्था, न्याय ही करने में रहते हैं उनको यम-राज कहते हैं।

पितृपितामहप्रपितामहाः । मातृपितामही प्रपितामह्यः सगोत्रा सम्बन्धिनः ।

जो वीर्य के निषेकादि कर्मों करके उत्पत्ति और पालन करे चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम से विद्या को पढ़े उसका नाम 'पिता' और 'वसु' है (पिता०) जो पिता का पिता हो और चालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य आश्रम से विद्या पढ़के सब जगत् का उपकार करता हो

उसको 'प्रपितामह' और 'आदित्य' कहते हैं तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये। (सगो०) जो समीपवर्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं वे भी सेवा करने के योग्य हैं। (आचार्यादि सं०) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले और श्वशुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिए।

जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवित हों उनकी प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है सो 'श्राद्ध' कहाता है। जो सत्य विज्ञानदान से जनों को पालन करते हैं वे 'पितर' हैं इस विषय में प्रमाण "ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः' इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। "समानाः समनसः पितरो यम-राज्ये" इत्यादि मन्त्र यमराजों, "पितृभ्यः स्वा-

धायिभ्यः स्वधा नमः" इत्यादि मन्त्र पितृपितामह प्रपितामहादिकों तथा 'नमो वः पितरो रसायेत्यादि" मन्त्र पितरों की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं और मनुजी ने भी कहा है कि पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं, यह सनातन श्रुति है।

मनु० अ० ३। श्लोक २८४।

इति पितृयज्ञविधिः